

आर्य जगत्

ओ३म्



कृष्णन्तो

विश्वमार्यम्

रविवार, 23 जुलाई 2017

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 23 जुलाई 2017 से 29 जुलाई 2017

श्रा. कृ. - 15 • वि० सं०-2074 • वर्ष 58, अंक 81, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दवाद् 193 • सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,117 • पृ.सं. 1-12 • इस अंक का मूल्य - 2.00 रुपये

हंसराज महिला महाविद्यालय जालंधर में 86वाँ वार्षिक दीक्षांत समारोह सम्पन्न हुआ

हं सराज महिला महाविद्यालय, जालंधर के प्रांगण में 86 वें वार्षिक दीक्षांत समारोह का प्रारंभ मुख्यातिथि पंजाब के गवर्नर व यू.टी. चण्डीगढ़ के प्रशासक महामहिम श्री वी.पी. सिंह बदनौर, विशिष्टातिथि डॉ. ए.के. शर्मा, उप-प्रधान डीएवी प्रबंधकर्त्री समिति, नयी दिल्ली, डॉ. सतीश शर्मा, निदेशक कॉलेजिज, डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति, नयी दिल्ली, श्री अरविन्द घई, सचिव, डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति, नयी दिल्ली व कॉलेज प्राचार्या प्रो. (डॉ.) अजय सरीन द्वारा ज्योति प्रज्ज्वलन व डी.ए.वी. गान द्वारा हुआ। कॉलेज प्राचार्या प्रो. (डॉ.) अजय सरीन ने आए हुए अतिथियों का अभिनंदन करते हुए कॉलेज की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए महाविद्यालय की उपलब्धियों का खुलासा किया और कहा कि एच.एम.वी. को हाल ही में 'फ्लैगशिप अवार्ड' और 'एक्सीलेंट कॉलेज इम्पार्टिंग पब्लिक सर्विस प्रोग्राम अवार्ड' से नवाजा गया।

अपने अध्यक्षीय संभाषण में मुख्यातिथि महामहिम गवर्नर महोदय ने नारी-शिक्षा की दिशा में संस्था के उच्च कोटि के प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए राष्ट्र की प्रगति के लिए मेक-इन-इंडिया मुहिम के साथ जुड़ने व मानवीय मूल्यों को धारण करने का संदेश दिया। उन्होंने दीक्षांत समारोह के प्रबन्धन की कार्यकुशलता, प्रगढ़ता तथा अनुशासन की मुग्धकंठ से प्रशंसा की।



डॉ. ए.के. शर्मा ने उच्च शिक्षा की महत्ता पर बल देते हुए गुणवत्ता की बढ़ोतरी की दिशा में ध्यान केंद्रित करने पर बल दिया। डॉ. सतीश कुमार शर्मा ने डिग्री प्राप्त छात्राओं के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए उन्हें सदैव प्रगतिशील पथ पर अग्रसर होने का संदेश दिया।

1129 छात्राओं को डिग्रियाँ प्रदान की गयीं जिनमें 965 स्नातक व 164 स्नातकोत्तर स्तर की थीं। विश्वविद्यालय में प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने के लिए 46 छात्राओं को रोल ऑफ ऑनर से सम्मानित किया गया। इसके साथ तीन प्राध्यापकों को भी इस सत्र में पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त करने पर सम्मानित किया गया। माननीय मुख्यातिथि को ओ३म् ध्वज व चारों वेदों का एक संग्रह स्मृति

चिन्ह के रूप में भेंट किया गया। विशिष्ट अतिथि डॉ. ए.के. शर्मा को भी ओ३म् ध्वज प्रदान कर सम्मानित किया गया।

श्री अरविन्द घई ने आए हुए अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापन किया। कॉलेज की समाचार-पत्रिका एचएमवी न्यूज़ का विमोचन भी किया गया। छात्राओं ने लोक-गीत प्रस्तुति द्वारा सुन्दर समां बांधा। इस अवसर पर श्रीमती कुसम शर्मा, डिप्टी कमिशनर, श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा, कमिशनर ऑफ पुलिस, श्री

पी.के. सिन्हा, एसडीएम, श्री राजीव शर्मा, मेयर, श्री सुनील ज्योति, श्री एस.एन. मायर, श्री अजय गोस्वामी, श्री रमेश शर्मा, जिला प्रधान बीजेपी, डॉ. पवन गुप्ता व डॉ. सुषमा चावला व अन्य गणमान्य नागरिक उपस्थित थे।



लारेंस रोड अमृतसर में ग्रीष्मावकाश से लौटे छात्रों ने किया यज्ञ

ग्रीष्मावकाश के समाप्त होते ही डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, लारेंस रोड, अमृतसर की शुरुआत पूर्ण उत्साह जोश, उमंग व उल्लास से हुई। पहले दिन स्कूल के प्रांगण में यज्ञ का आयोजन किया गया ताकि दूसरे सत्र के लिए विद्यार्थियों को ईश्वर का शुभाशीष मिल सके। हवन के बाद स्कूल की प्रधानाचार्या डॉ. (श्रीमती) नीरां शर्मा जी ने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि उन्हें अपने अध्यापकों के दिखाए रास्ते पर चलते हुए मेहनत कर अपने लक्ष्य



की ओर बढ़ना होगा। उन्होंने कहा कि परीक्षा प्रणाली में जो बदलाव आया है उसके चलते अध्यापकों, छात्रों और अभिभावकों को कड़ी मेहनत करनी होगी। इसके लिए अभी से गंभीर होने की आवश्यकता है।

प्रधानाचार्या जी ने कहा कि ईश्वर पर विश्वास, उसकी प्रार्थना और समीपता व्यक्ति में वह सामर्थ्य पैदा करती है जिससे उन्नति और सफलताओं का मार्ग प्रशस्त होता है।

अध्यापकों तथा विद्यार्थियों ने इस यज्ञ में सोत्साह भाग लिया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। - स. प्र. समु. 9

संपादक - पूनम सूरी

आर्य जगत्

ओ३म्

सप्ताह - रविवार, 23 जुलाई 2017 से 29 जुलाई 2017

दम्पती का कर्तव्य

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

प्राचीं प्राचीं प्रदिशमारभेथाम्, एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।

यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ, तस्य गुप्तये दंपती संश्रयेथाम्॥

अथर्व 12.3.7

ऋषिः यमः। देवता स्वर्गः, ओदनः, अग्निः। छन्दः त्रिष्टुप्।

● (दंपती) हे पति-पत्नी! [तुम दोनों] (प्राचीं प्राचीं प्रदिशं) अगली-अगली प्रकृष्ट दिशा को (आरभेथां) ग्रहण करो। (एतं लोकं) इस गृहस्थ आश्रम को (श्रद्द-दधानाः) श्रद्धावान् लोग (सचन्ते) प्राप्त करते हैं। (वां) तुम दोनों की (यत्) जो [वस्तु] (अग्नौ) अग्नि में (परिविष्टं) डाली जाकर (पक्वं) परिपक्व हो गई है (तस्य) उसके (गुप्तये) रक्षण के लिए (संश्रयेथाम्) एक-दूसरे का आश्रय लो।

● हे वर-वधू! तुम परस्पर विवाह-सूत्र में परिणद्ध हुए हो। पर क्या तुम गृहस्थाश्रम का उत्तरदरयित्व और कर्तव्य भी जानते हो? यह आश्रम श्रद्धावानों का आश्रम है, पति और पत्नी की आपस में एक-दूसरे के प्रति श्रद्धा और दोनों की मिलकर भगवान् में श्रद्धा जब होती है तब इस आश्रम का प्रसाद फलीभूत होता है। श्रद्धा में समर्पण का भाव जुड़ा हुआ है। पति-पत्नी एक-दूसरे को आत्म-समर्पण करते हैं और दोनों मिलकर परम प्रभु को आत्म-समर्पण करते हैं। श्रद्धा और समर्पण कितने पवित्र शब्द हैं! गृहस्थ दम्पती यदि इन शब्दों का मर्म समझकर आचरण करें, तो उनका गृहस्थाश्रम सौरभ बखरेने लगता है।

हे दम्पती! तुम दोनों आगे-आगे की प्रकृष्ट दिशा की ओर बढ़ते चले जाओ। तुम ब्रह्मचर्याश्रम की साधना कर चुके हो। इस बात को मत भूलो कि यह गृहस्थाश्रम भी साधना का ही आश्रम है। साधना करनेवाले ही आगे बढ़ते हैं और वस्तुतः आगे पग बढ़ाना भी एक साधना ही है। निरुद्देश्य विलासमय गृहस्थ जीवन साधना-हीनों का होता है। यदि तुम गृहाश्रम में विलास और साधना को

एकाकार कर सकोगे, तो निश्चय ही तुम्हारा गृहाश्रम विकास का सोपान बन सकेगा।

गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी अग्नि प्रज्वलित करते हैं, आहिताग्नि बनते हैं। अपना सब-कुछ उन्हें उस अग्नि में परिपक्व करना होता है। अपना तन, अपना मन, अपना धन, अपना आत्मा, अपने कार्य, सबको परिपक्व करना होता है। जो परिपक्व हो गया है, उसकी सुरक्षा करनी है और जो परिपक्व नहीं हुआ है उसे परिपक्व करने में तीव्रता से तत्पर होना है। यह परिपक्वता ही गृहस्थाश्रम की देन है। पर यह परिपक्वता भी अकेले-अकेले नहीं होती, पति-पत्नी मिलकर ही परिपक्वता सम्पादित करते हैं और मिलकर ही परिपक्व की रक्षा करने में समर्थ होते हैं।

हे गृहस्थ-जनो! स्मरण रखो, गृहस्थाश्रम श्रद्धा का, आगे-आगे बढ़ने का और परिपक्व होने का आश्रम है। अतः इस आश्रम की नींव में और इस आश्रम पर बने भवन में इन तीनों को सदा सिंचित करते रहो। तुम्हारा मंगल होगा।

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

अमृत-पान

● महात्मा आनन्द स्वामी



पिछले अंक में स्वामी जी ने मूसलाधार वृष्टि के कारण उजड़ती हुई बस्ती के लोग अपनी झोंपड़ियों और मकानों के पुनर्निर्माण में तल्लीन हो जाते हैं। दीवारें बनाई जाती हैं, छतें डाली जाती हैं। किसान और चरवाहे काम भी करने जाते हैं और साथ-साथ गीत भी गाते जाते हैं। जीवन पुनः उसी तरह चलने लगता है। बस्ती के दिन तो लौट आए लेकिन इस देश के वे दिन क्या लौट कर आयेंगे?

स्वामी जी ने "स्वर्ग खाली पड़ा है" इस दूसरी रोचक कथा में धुमकड़ नारद का प्रतीक उठाकर स्वामी जी ने कहा आश्चर्य है और बड़ा भारी आश्चर्य है कि "स्वर्ग खाली पड़ा है" क्योंकि संसार वाले अपने धन्धों और व्यापार आदि में इस प्रकार फँसे हैं कि वे स्वर्ग आना नहीं चाहते। क्या स्वर्ग खाली ही पड़ा रहेगा, इसका उत्तर संसार वालों को देना चाहिए।

अब और दो लघु कथायें

इस बदबू से कब निकलोगे?

शहर से दूर, जंगल के किनारे, सुन्दर, मनोहर, हरभरे टीले पर एक कुटिया थी। कुटिया में एक वैरागी, तपस्वी, संन्यासी रहता था। लोग आते थे और धर्मोपदेश लेकर चले जाते थे। संसार के झंझटों, दुनिया के झमेलों और क्लेशों से दुखी लोग आते थे और वेदामृत का पान करके शान्त होकर चले जाते थे। शहर का राजा भी प्रायः महात्माजी के पास जाता था और हृदय की तपन बुझानेवाला मनोहर उपदेश सुनता था।

एक दिन प्रातःकाल ही जबकि पक्षियों ने अपनी रागनियाँ आरम्भ की ही थीं कि राजा उस कुटिया में पहुँचा। उसने विनम्रता से, प्रेम और श्रद्धा से नमस्कार किया और कहने लगा—“स्वामिन्! आज हमारे घर चलिए और उसे पवित्र कीजिए।” महात्मा ने बहुत इन्कार किया, परन्तु राजा ने ऐसे सच्चे दिल से अनुनय-विनय और प्रार्थना की कि महात्माजी को मानना पड़ा।

महात्माजी राजा के साथ नगर की ओर चले। राजा का महल आज बड़ी शान से सजाया गया था। सफाई पहले भी होती थी, परन्तु आज तो सफाई में कमाल ही कर दिया। खुली और जंगली हवा में रहनेवाले संन्यासी को शहर की हवा कहीं बुरी न लगे, इसीलिए मार्ग में भी दोनों ओर सुगन्धित फूलों के गमले रखे गये। इत्र का छिड़काव किया गया। महल में धूप और अगर-तगर जल रहा था। सुगन्ध की लपटें आ रही थीं।

महात्मा राजा के महल में पहुँचा। अभी कुछ ही मिनट बैठे थे कि महात्माजी ने कहा—“राजन्! आपके घर से बदबू आती है। हम चलते हैं।” राजा ने हाथ जोड़े, सिर झुकाया और कहा—“स्वामिन्! यहाँ पर बदबू का क्या काम? चारों ओर इत्र छिड़का हुआ है।”

महात्मा—“राजन्! तुम सदा इसी बदबू में रहते हो, इसलिए तुम उसे अनुभव नहीं कर

सकते।”

राजा—“मैं कैसे मानूँ। मुझे तो सुगन्ध-ही-सुगन्ध आती है।”

महात्मा—“अच्छ ठहरो। हम तुम्हें बतला देंगे।”

अब महात्माजी राजा के साथ भ्रमण के लिए निकले। चलते-चलते चर्मकारों के बाज़ार में आ निकले, जहाँ चमड़े के कुपे, पट्टे, जूते, चप्पल बन रहे थे इस स्थान पर पहुँचकर महात्माजी ठहर गये। राजा ने कहा—“स्वामिन्! यहाँ से शीघ्र निकल चलिए। इस स्थान पर बड़ी बदबू है।” महात्माजी हँसे और एक चर्मकार से पूछा—“क्यों भाई! यहाँ कुछ बदबू है?” उसने उत्तर दिया—“नहीं, यहाँ कोई बदबू नहीं है।”

अब महात्माजी ने राजा की ओर देखकर कहा—“राजन्! कहिए, इस स्थान पर बदबू है या नहीं?”

राजा—“निःसन्देह भारी बदबू है।”

महात्मा—“परन्तु चर्मकारों को बदबू नहीं आती।”

राजा—“इनका मस्तिष्क गन्ध हो गया है।”

महात्मा—“ठीक इसी प्रकार गृहस्थ में रहते हुए आपका मस्तिष्क गन्ध हो गया है और उस बदबू फैलानेवाले गृहस्थ को आप छोड़ना नहीं चाहते।”

महात्मा और राजा का वार्तालाप यहीं समाप्त हो गया, परन्तु हमारी कथा अभी समाप्ति पर नहीं है। प्रश्न यह है कि वे आर्य भाई, जो गृहस्थ भोग चुके हैं, क्या उन्हें अब भी बदबू नहीं आती और क्या वे अब भी इस बदबू से निकलना नहीं चाहते।...वृद्ध आर्यपुरुषों का कर्तव्य है कि वे इस प्रश्न उत्तर दें, जो आर्यजनता की ओर से हो रहा है कि—

इस बदबू से कब निकलोगे?

हमारी पहुँच का ईश्वर : एक गवेषणा

● आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा



ईश्वर सर्वव्यापक - ईश्वर जहाँ सर्वनियन्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वाधार, सर्वेश्वर आदि पदावलियों का वाच्य है वहीं पर वह 'सर्वव्यापक' इस पद विशिष्ट से भी वाच्य होता है। परमेश्वर सर्वव्यापक है, वह ब्रह्माण्ड के अणु से अणु, परमाणु से परमाणु, स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म समग्र पदार्थों में व्याप्त है। उसकी व्यापकता को वेदों ने भलीभाँति प्रतिपादित किया है। मन्त्र है-

सः सधीची सविषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः। (ऋ 1/164/31)

अर्थात् **सः सधीची** = वह परमेश्वर अपने साथ विचरने वाले, और **सः विषूची** = वह अपने से दूर विषम मति में चलने वाले संसार को, **वसानः** = आच्छादित करता हुआ, **भुवनेषु अन्तः** = लोक लोकान्तरों के मध्य, **आ वरीवर्ति** = निरन्तर अच्छे प्रकार वर्तमान है, विद्यमान है।

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वाः ह जातः स उ गर्भे अन्तः। यजु. 32/4
अर्थात् **एषः देवः** = यह दिव्य परमात्मा, **ह** = निश्चय से, **सर्वाः प्रदिशः** = सब दिशाओं उपदिशाओं में, **अनु** = अनुकूलता से व्याप्त है, **सः उ** = वही, **ह** = निश्चय से, **पूर्वः जातः** = प्रथम कल्प के आदि में प्रकट होता है, **सः उ** = वह ही, **गर्भे अन्तः** = अन्तःकरण में विद्यमान है।

तस्मिन्निदं सं च विद्यैति सर्व सऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। यजु. 32/8

अर्थात् **तस्मिन्** = उस परमेश्वर में, **इदं सर्वम्** = यह सम्पूर्ण जगत्, **सं एति** = प्रलय काल में संगत होता है, **च** = और उत्पत्ति समय में **वि**, **च** = पृथक् स्थूल रूप में विद्यमान होता है। **सः** = वह, **विभूः** = व्याप्त हुआ परमेश्वर, **प्रजासु** = उत्पन्न हुई सृष्टि के जड़ व जीवों में **ओतः** = खड़े ताने रूप सूत में जैसे वस्त्र, **च** = तथा, **प्रोतः** = तिरछे सूत में जैसे वस्त्र, ओत प्रोत है, वैसे वह परमात्मा जगत् में ओत प्रोत है, व्याप्त हो रहा है।

ईश्वर की व्यापकता प्रतिपादक इन मन्त्रों से सुस्पष्ट है कि जगत् की कोई भी वस्तु ईश्वर से खाली नहीं है। ऐसा कोई भी जड़ चेतन पदार्थ नहीं है जहाँ ईश्वर की व्यापकता न हो, उसकी सत्ता न हो।

परमेश्वर की सर्वव्यापक विद्यमानता से देश देशान्तर के पशु पक्षी चहक रहे हैं। कितना अद्भुत वर्णन उपनिषदों में किया गया है- 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्', 'भयादस्याग्निस्पति' आदि

उपनिषद् वचन भी हमें प्राप्त हैं, वह सर्वव्यापक प्रभु की कृपा का ही प्रताप है। **ईश्वर की खोज**

वेद और उपनिषदादि वचनों में वर्णित ईश्वर जैसे लोकलोकान्तर की दिशाओं, उपदिशाओं में विद्यमान है वैसे ही मनुष्य के अन्दर भी विद्यमान है। उस महान सर्वव्यापक ईश्वर की सन्निधि, उपलब्धि के लिए मनुष्य ने जब जब होश सँभाला है, तब तब उसने 'इन्द्रस्य युज्यः सखा' जीवात्मा का सदा साथ रहने वाला जो मित्र परमेश्वर है, उसे ढूँढने के लिए बाहरी चकाचौंध के मन्दिरों, मठों, मस्जिदों व गिरजाघरों में खूब दौड़ लगाई है। पर्वतों की ऊँची श्रेणियों, गहरी घाटियाँ, गुफाएँ, कैलाश के हिमखण्ड, केंदारनाथ, बद्रीनाथ, श्रीनाथ, ऋषिकेश, वैष्णोदेवी, तिरुपति आदि के देवालय भी नहीं छोड़े। काशी, प्रयाग, हरिद्वार के तीर्थ, मथुरा, वृन्दावन के सँकरे गलियारों की खाक भी खूब छानी है।

खोज में असफलता

इस खोज में उन अन्वेषकों को व्यापक ईश्वर मिल गया हो, ऐसा कहने का साहस कोई नहीं कर सका है। उनके इस श्रम में जो मिला है, वह है प्राकृतिक सौन्दर्य, मठ मन्दिरों के ढाँचे, मूर्तियों की सजावट, उनकी काल्पनिक मुखाकृतियाँ, जल स्रोत, झरने, वहाँ की तड़क भड़क और लोगों की भीड़ भाड़। बहुत बार तीर्थ स्थलों में लम्बी कतारों के फंदे में ऐसे फँसते हैं कि निकलना भी कठिन होता है।

असफलता का कारण गलत स्थान चयनः

जानते हैं? मनुष्य के श्रम का यह ईश्वर प्राप्ति विषयक असफल परिणाम क्यों होता है? क्योंकि हम नासमझी से ईश्वर को ढूँढते हुए गलत स्थान चुन लेते हैं। गलत स्थान का चयन, परिणाम में सुखदायी नहीं होता। गलत स्थान पर श्रम तो लगता है, पर विश्राम = आनन्द, सुख, शान्ति, आराम नहीं दे पाता।

गलत स्थान चयन की नासमझी, मनुष्य की ईश्वर की खोज में भी है। स्मरण रखें! दृश्य जगत् में व्यापक ईश्वर मनुष्य के लिए नहीं खोया है। उसके लिए तो उसके अन्तःकरण में वर्तमान जो ईश्वर है, वह खो गया है। जिसकी खोज के लिए मनुष्य बाहर तो दौड़ रहा है और अपने अन्दर झाँकने की कोशिश भी नहीं कर रहा।

ईश्वर प्राप्ति का उचित स्थान

मठ, मन्दिर, चर्च, मस्जिद आदि ईश्वर के गलत स्थान हैं, सही स्थान

मनुष्य का अपना शरीर, शरीर के अवयव, अन्तःकरण व आत्मा हैं। क्योंकि मनुष्य का आत्मा जो परमेश्वर का भान करने वाला है वह उसके अपने शरीर में है, शरीर के बाहर नहीं। ईश्वर प्राप्ति का सही स्थान बताते हुए मुण्डकोपनिषद् में कहा है-

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि। दिव्ये ब्रह्मपुरे होष व्योम्यात्मा प्रतिष्ठितः।

मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।

तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति॥ (मुण्ड. 2/2/7)

अर्थात् जो सर्व है, सर्ववित् है, सर्वत्र व्यापक है जिसकी महिमा भूलोकादि तथा दिव्य ब्रह्मपुर हृदय में, हृदयाकाश में प्रतिष्ठा पा रही है। जो मनोगम्य है, जो प्राण व शरीर का, नेता = संचालक है, जो अन्नादि भोगों में विद्यमान है उसे हृदय में, सन्निधाय = स्थित कर, धीराः = ज्ञानी उस प्रभु को जानकर उसका साक्षात्कार करते हैं। जिसके हृदय में अमर आनन्द स्वरूप प्रकाशित हो रहा है।

उपनिषद् वचन का भाव स्पष्ट है कि ईश्वर प्राप्ति का सही स्थान हृदय है। आत्मज्ञानियों ने हृदय में ही ईश्वर का साक्षात्कार किया है और आज तक ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त करते रहे हैं।

उचित स्थान होने पर भी अज्ञान बाधक

सही स्थान का परिज्ञान होने पर भी अज्ञान, अन्धकार ईश्वर प्राप्ति का बहुत बड़ा बाधक है। अन्धकार में हाथ को हाथ भी नहीं सूझता। ईश्वर प्राप्ति का अज्ञान तमस् है- रोग द्वेष, दुःख दर्द, हानि-ग्लानि, मोह-माया, मद-मात्सर्य आदि। इस अन्धकार में ईश्वर के आनन्द, प्रकाश, ज्ञान आदि का मूल्य घट गया है। अमूल्य मूल्यवान् हो गया है और मूल्यवान् अमूल्य बन गया है। लोक लोकान्तर की महनीय शक्ति ईश्वर, मात्र ईश्वर शब्द रूप में सिमट गया है। ईश्वर का मानवीकरण भी हो गया है। जिसके जयघोष हैं- हरे रामा हरे रामा, सीता राम, राधे श्याम, जय श्री कृष्ण आदि।

निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार, सर्वव्यापक ईश्वर की प्राप्ति के लिए, उसकी खोज के लिए वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों में अनेक उपाय, प्रकार निर्दिष्ट किए हैं। जिनमें प्रथम कल्पिक सर्वोपरि उपाय है, अपने अन्दर का अज्ञान, अन्धकार, दुरित को दूर करना।

अज्ञान निवारण आवश्यक

अज्ञान निवारण निर्देश का प्रसिद्ध परिज्ञात वेदादेश मन्त्र है-

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ यजु. 30/3

महर्षि दयानन्द ने संस्कारविधि में इस मन्त्र का एवंविध अर्थ किया है- हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त, शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके, हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुखों को दूर कर दीजिए, जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्रदान कीजिए।

सुख जो दो प्रकार का है- एक जो सत्य विद्या की प्राप्ति में अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्तीराज्य, इष्ट मित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्यन्त उत्तम सुख का होना और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिसको मोक्ष कहते हैं और जिसमें ये दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं, उस सुख को आप हमारे लिए सब प्रकार से प्राप्त करिए।

महर्षि दयानन्द कृत मन्त्रार्थ से स्पष्ट है कि **निःश्रेयस** = ईश्वर, मोक्ष प्राप्ति में तथा **अभ्युदय** = लौकिक सुख की प्राप्ति में, जो **दुरितानि** = अज्ञान से उत्पन्न राग, क्लेशादि दुर्गुण, दुर्व्यसन व दुःख रूप तमस है उन्हें हटाना नितान्त आवश्यक है।

दुरित प्रकार

यह दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःखरूप अज्ञान, दुरित तमस् तीन कारणों से आता है-

1. **दुष्ट ज्ञान** - अनार्ष पुस्तकों, संस्कारहीन व्यक्तियों की संगति से दुष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है। वह दुष्ट ज्ञान दुरित = दुर्गुणों की उत्पत्ति करता है।
2. **दुष्ट गमन** - मदिरालय, वेश्यालय, द्यूतालय आदि स्थानों में गमनागमन करने को दुष्ट गमन कहा जाता है। जिससे दुरित = दुर्व्यसन की उत्पत्ति होती है।
3. **दुष्ट प्राप्ति** - हिंसा, छीना झपटी, लाटरी आदि से धन प्राप्ति, दुष्ट प्राप्ति कही जाती है। जो दुरित = दुःखों को उत्पन्न करती है।

इन दुर्गुण, दुर्व्यसन दुखों से उत्पन्न राग, द्वेष आदि परमात्मा के आनन्द, सुख, कृपा का पात्र व्यक्ति को नहीं बनने देते और न ही परमात्मा के स्वरूप, उसकी उपलब्धि, प्राप्ति होने के स्थान को ज्ञात होने देते हैं। ईश्वर की प्राप्ति का कथन

(पिछले अंक से आगे)

पर्यावरण संरक्षण यज्ञ

● वेद प्रकाश शास्त्री

मनुष्य एवं जीवजन्तु संरक्षण—

आज मनुष्य एवं अन्य जीव-जन्तुओं का जीवन प्रदूषण के कारण खतरे में है। हमें इसका निदान अवश्य खोजना चाहिए। वेद कहता है—
ओ३म् द्विपाद् चतुष्पाद् अस्माकं सर्वमस्तु अनातुरं स्वाहा॥ यजु. 12/95

हमारे दोपाए अर्थात् मनुष्यादि और चौपाए अर्थात् गौ आदि पशु सभी नीरोग हों।

ओ३म् द्विपादव चतुष्पात् पाहि स्वाहा॥ यजु. 14/8

दोपाए-मनुष्यादि और चौपाए-गौ आदि पशुओं की रक्षा करो।

ओ३म् मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः

स्वाहा॥ यजु. 16/16

हमारी गौओं के प्रति, हमारे घोड़ों के प्रति हिंसित मत हों।

ओ३म् परिप्लवेभ्यः स्वाहा॥ यजु. 22/29

जलों में चतुर्दिक् तैरने वाले प्राणियों की अनुकूलता के लिए यह आहुति कल्याणकारक हो।

ओ३म् चराचरेभ्यः स्वाहा॥ यजु. 22/29

चर अर्थात् विचरणशील प्राणियों के लिए तथा अचर अर्थात् वृक्षादिकों के लिए यह आहुति हम सभी प्रदान करते हैं।

ओ३म् सरीसृपेभ्यः स्वाहा॥ यजु. 22/29

रेंगने वाले अर्थात् चींटी, कीड़े-मकोड़े, सर्प आदि प्राणियों की अनुकूलता के लिए यह आहुति समर्पित है।

ओ३म् वनानां पतये नमः स्वाहा॥ यजु. 16/18

वनों की रक्षा करने वाले अथवा वनों के स्वामी लोगों के कल्याणार्थ हम यह आहुति दे रहे हैं।

ओ३म् वृक्षाणां पतये नमः स्वाहा॥ यजु. 16/19

आम्रादि वृक्षों के अधिष्ठाता के सम्मानार्थ यह आहुति है।

ओ३म् ओषधीनां पतये नमः स्वाहा॥ यजु. 16/19

ओषधियों के रक्षक अथवा चिकित्सकों के लिए यह आहुति समर्पित है।

ओ३म् अरण्यानां पतये नमः स्वाहा॥ यजु. 16/20

अरण्यां अर्थात् वनों के रक्षक अथवा स्वामियों के हितार्थ यह आहुति समर्पित है।

ओ३म् पृथिवि देवयजनि ओषध्याः ते मूलं मा हिंसिषं स्वाहा॥ यजु. 10.25

देवताओं के यज्ञ करने की आधारभूत है पृथिवि!

(हम) तेरी इन औषधियों के मूल अर्थात् जड़ को कभी हिंसित मत करें।

4-E कैलाश नगर
फाजिल्का

समाज के विख्यात नेता व शिक्षाविद् डॉ. धर्मपाल आर्य नहीं रहे

सौम्य व्यक्तित्व के शील स्वभाव के धनी, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त, वैदिक धर्म, भारतीय संस्कृति व आर्यसमाज के प्रति समर्पित विख्यात आर्य नेता तथा प्रखर शिक्षाविद् डॉ. धर्मपाल आर्य का रविवार, 09 जुलाई, 2017 को प्रातः 4 बजे निधन हो गया।

डॉ. धर्मपाल का जन्म 19 मार्च सन् 1942 को उत्तर प्रदेश के मेरठ (अब बागपत) जनपद के बडौत नगर में हुआ। आपके दादाजी एवं पिताजी कट्टर आर्य समाजी थे। आसपास के गाँवों में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। वर्तमान का जाट वैदिक पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज बडौत आपके कुएँ वाले घर में, 1917 में वैदिक पाठशाला के रूप में प्रारंभ हुआ था।

आपने अंग्रेजी साहित्य और हिन्दी साहित्य में एम.ए. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आपने अपना अध्यापन कार्य अंग्रेजी के प्रवक्ता के रूप में दिल्ली के एक केंद्रीय विद्यालय से प्रारंभ किया। उसके पश्चात् आपने एम.एड., हिन्दी साहित्य से पी.एच.डी., पोस्ट एम.ए. डिप्लोमा (अनुवाद सिद्धान्त और व्यवहार) की उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तर्गत जाकिर हुसैन कॉलेज दिल्ली में अध्यापन कार्य किया तथा हिन्दी विभागाध्यक्ष पद पर रहे। दिल्ली विश्वविद्यालय में भी एसोसिएट प्रोफेसर

के पद पर कार्य किया।

पैतृक संस्कारों के कारण आप प्रारंभ से ही आर्य समाज की बहुमुखी गतिविधियों से जुड़े रहे। आपने अपने मित्रों के सहयोग से आर्य समाज शालीमार बाग का भव्य-भवन निर्मित कराया। दिल्ली महानगर की समस्त आर्य समाजों व आर्य-शिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रमों में आप वक्ता के रूप में सक्रिय भाग लेते रहे। दिल्ली सभा व सम्बंधित आर्यसमाजों को सुचारु रूप से चलाने में डॉ. धर्मपाल आर्य की नीति-कुशलता, कर्मठता व जन-सम्पर्क में महती भूमिका रही। दिल्ली सभा को संगठित व आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ करना, वैदिक-साहित्य व साप्ताहिक-पत्र "आर्य सन्देश" का नियमित सम्पादन व प्रकाशन करना तथा अनेकों संग्रहणीय विशेषांकों को प्रकाशित करना, आपकी अद्भुत कार्यशैली का उत्कृष्ट उदाहरण था। डॉक्टर साहिब आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के भी पदाधिकारी रहे। दिल्ली में आयोजित होने वाले सभी राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलनों में आपकी सहभागिता प्रशंसनीय रही।

सन् 1993 में डॉ. धर्मपाल जी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के कुलपति बनाये गये। आपने सर्वप्रथम विश्वविद्यालय के नये-नये भव्य भवनों का निर्माण कराया और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनेक नये-नये पाठ्यक्रमों की स्वीकृति ली। हरिद्वार में

कन्याओं के लिए एक अलग महाविद्यालय की स्थापना कराना, आपके अदम्य साहस और कर्मठता का प्रतिबिम्ब है।

आपने पहली बार, हरिद्वार नगर में स्वामी श्रद्धानन्द सप्ताह के अवसर पर प्रतिवर्ष भव्य-शोभायात्रा निकालने की परम्परा डाली।

आप भारतीय विश्वविद्यालय संघ नई दिल्ली, एसोसिएशन ऑफ कॉमन वेलथ यूनिवर्सिटीज लन्दन, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली, महर्षि संदीपनी वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन, भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों की हिन्दी-सलाहकार समितियों आदि से सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं। आकाशवाणी व दूरदर्शन पर आपकी वार्ताएँ तथा परिसंवाद प्रायः प्रसारित होते रहे हैं। देश-विदेश की आर्य-संस्थाओं व विश्वविद्यालयों में आपने अपने शोध-पत्रों का वाचन किया।

आपने स्वामी श्रद्धानन्द एकता के सूत्रधार, महर्षि दयानन्द की हिन्दी भाषा के देन, दिवंगत आर्य श्रेष्ठी, आर्यसमाज आज के संदर्भ में, सामयिक उन्मेष, युग संदर्भ, आचार्य रामदेव, आर्यसमाज के ज्योतिष्मान स्तम्भः लाला चतुरसेन गुप्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व आदि ग्रन्थों की रचना की।

आपने "वेद-पथ", "वेद-सुधा" व "आर्य संदेश" का सफल सम्पादन



किंपा, तथा दिल्ली से प्रकाशित "ओ३म् सुप्रभा" मासिक-पत्रिका एक दशक तक परामर्शदाता रहे। वैदिक-संस्कृति व राष्ट्रीय-एकता से सम्बंधित आपके शताधिक शोध-परक लेख देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

डॉ. धर्मपाल जी आर्य समाज के प्रचार-प्रसार हेतु निरन्तर आपने शोधपूर्ण लेख लिखते रहते थे

यद्यपि आज डॉ. धर्मपाल आर्य का साक्षात् शरीर रूप में विद्यमान नहीं है, तथापि उनका दिव्य व्यक्तित्व सदैव हमें प्रेरणा देता रहेगा।

'आर्यजगत्' इस महान् आत्मा के दिवंगत होने पर हार्दिक शोक व्यक्त करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

लेखक! आपको कहावत भी पता नहीं, कहावत है— कौआ चला हंस की चाल। आपने कौआ के स्थान पर हंस, और हंस के स्थान पर कौआ लिखकर कहावत को उल्टा-पुल्टा कर दिया है। आपका आक्षेप ठीक ही है। कहावत तो आपने जो बतायी है, वही है, पर लेखक ने भूलवश नहीं समझ बूझकर कौआ के स्थान पर हंस और हंस के स्थान पर कौए को इसलिए रख दिया है, क्योंकि कौए ने तो अपनी चाल नहीं बदली है, पर मनुज-हंस ने अपनी चाल को बदल दिया है। देखने में तो वह ऊपर से हंस लगता है, किन्तु उसका व्यवहार बिल्कुल कौए समान हो गया है। अब देखिये न विश्व के तथाकथित सब धर्म सम्प्रदाय देखते ही रह गये, संसार के सभ्य कहे जाने वाले देश आयरलैण्ड, अमरीका आदि में समलैंगिक सम्बन्धों को खुलेआम वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी। जबकि भारत जैसे समस्त देशों में अब भी इसे घृणास्पद समझा जाता है। अलीगढ़ महानगर ने तो एक उदाहरण भी प्रस्तुत कर दिया है। यहाँ के अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के मराठी भाषा विभागाध्यक्ष प्रोफेसर, कालोनी में ऐसा अप्राकृतिक दुष्कृत्य करते पकड़ लिए गये, तो उन्हें कालोनी से निकलना पड़ा, पद से हटना पड़ा, और न्यायालय के निर्णय आने से पूर्व ही मरण का वरण करके इस भूमि के भार को ही हल्का करना पड़ गया।

सहज ही एक प्रश्न उठता है कि कोई भी विधायिका या न्यायपालिका क्या नैसर्गिक न्याय के विरुद्ध ऐसा निर्णय कर सकती है। मनुष्यों के अतिरिक्त क्या पशुओं पर भी वह ऐसी विधिक प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकती है। जो मनुष्य पैरों के बल पर चलते हैं, उन्हें क्या किसी कानून के द्वारा, सिर के बल चलने पर बाध्य किया जा सकता है? सामान्य मानव के साथ तो ऐसा हो नहीं सकता है, किन्तु जो अपनी विधायी सभाओं में ऐसे अनैतिक निर्णय पारित करते हैं, उनके सिर ईश्वर पुनर्जन्म में अवश्य ऊपर से नीचे कर सकता है। कोई भी उनसे मिल सकता है, सामने खड़े हुए बड़े-बड़े वृक्ष पुकार-पुकार कर कह उठेंगे, हम ही प्रभु-प्रकृति के विपरीत बुद्धि रखने वाले तथाकथित सभ्य प्राणी हैं। अब तो उन्हें अपनी हरीतिमा- सुगन्धि बिखेरकर पर्यावरण-शोधन की आज्ञा निभानी है। वे निश्चिन्त भी हैं क्योंकि उन्हें वर्तमान जीवन के आगे पुनर्जन्म का पता ही नहीं है।

नीतिकार ने ठीक ही लिखा है कि

हंस चला कौआ की चाल

● देवनारायण भारद्वाज

आहार-निद्रा, भय एवं मैथुन हर प्राणी की आवश्यकता है, यदि कोई यहाँ तक ही सीमित रहता है तो वह मनुष्य होते हुए भी पशु ही है, और यदि वह धर्म के आचरण को अपने साथ जोड़ लेता है, तो यही उसकी विशेषता मननशील मनुष्य को उच्चतर पद प्रदान करती है। सभी को ज्ञात है कि ईश्वर ने मनुष्य को कर्म करने की स्वतन्त्रा प्रदान की है, किन्तु उसका पूर्ण फल भोगने का अधिकार उसके हाथ में नहीं है, उसको तो परमात्मा के विधि-विधान के अनुसार ही उसे भोगना पड़ेगा। आहार की याचना हो या काम की वासना हो, पशु को पूर्व निर्धारित विधि पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। शाकाहारी-मांसाहारी नहीं हो सकता, मांसाहारी-शाकाहारी नहीं हो सकता। इसी प्रकार काम-वासना के प्रति पशुओं की ऋतुकाल एवं योनि-अंग की निर्भरता को भंग नहीं किया जा सकता। परन्तु मनुष्य को मननशीलता की विद्युत तरंगें प्रदान कर परमात्मा ने धरती पर भेजा है। यदि वह इस मननशीलता की धारा से कट जाता है तो वह मननहीनता के अन्धकार में जकड़ जाता है। परिणामतः वह अधम से अधम स्थिति में पहुँचने को विवश होता है।

यही मननशीलता उसे हंस बनाती है जो नीर-क्षीर के विवेचन में समर्थ होता है, जो आत्मा की शुद्धता को सुनिश्चित करता है और जो नभमण्डल के सूर्य से प्राप्त ज्ञानप्रकाश की बुद्धिमत्ता से भूमण्डल का सूर्य बनता है। मननशीलता की यह विद्युत् हटते ही आकार-प्रकार में मनुष्य के स्वरूप में दिखाई देने वाला वहीं हंस-वंश मनुष्य मननहीनता से ग्रसित होकर कौआ बन जाता है। जिसके विषय में युगों से प्रचलित कहावत “स्याना कौआ ‘गू’ खाये” चरितार्थ हो उठती है, जो खीर खाने के बाद भी दिखाई पड़ने वाले ‘गू’ में अपनी चोंच डालने से बाज़ नहीं आता। सभी समलैंगिक लोग भी ‘गे’ कहलाते हैं और वे निर्लज्जतावश ‘गू-अंग’ के आग्रही बन बैठते हैं। चोर गठरी को सिर पर रखकर भाग रहा था, मार्ग में मिला एक सिपाही, उसने चोर को डाँटते हुए कहा गठरी में चुराकर क्या ले जा रहा है? चोर ने उत्तर दिया— ‘गेहूँ’। अच्छा तो कोई बात नहीं जाओ मैं भी ‘गे’ हूँ। दुष्कर्म परस्पर एक दूसरे का ऐसे ही समर्थन करते हैं। गठरी में गेहूँ का अनाज

था, सिपाही उसे अपना साथी ‘गे’ समझ बैठा।

इसीलिए वेद भगवान हमें सावधान करते हुए अपने पूर्वजों की शरण में रहकर आदर्श जीवन की प्रेरणा प्रदान करते हैं। देखिये मन्त्र (अथर्व 2.18.26)

यत् ते अंगमतिहितं पराचैरपानः प्राणो

य उ वाते परेतः।

तत्ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरावेशयन्तु॥

भावार्थतः— हे मनुष्य जो तेरा शारीरिक एवं आत्मिक अंग उल्टा होकर अपनी मर्यादा को छोड़ बैठा है, अथवा तेरा जो अपान या प्राण विचलित होकर विपरीत गामी हो गया है। नीड तुल्य घर में रहने वाले पितर वृन्द अपनी संगति से तेरी इस हानि या दुर्वशा को फिर से वैसे ही ठीक कर दें जैसे बड़ी हुई अव्यवस्थित घास को उसी घास का लपेटा लगाकर बांध दिया जाता है, तो वह श्रृंखलाबद्ध होकर सुडौल हो जाती है। घास के बंध जाने से कई परिष्कारात्मक लाभ मिल जाते हैं। भूमि-वायु, वर्षा जल तथा सूर्य रश्मियों का सरलता से अवशोषण करते हुए अपनी उर्वरता को बनाये रखती है और क्षतिकारी कृमियों से बचती है। साथ ही यह घास भी मानव-पशु के लिए उपयोगी बनी रहती है। मन्त्र में वर्णित घास कुछ और मार्गदर्शन भी प्रदान करती है। जैसे मनुष्य के सिर में अनगिनत बाल उगते हैं जो मनुष्य के मन में उगने वाले असंख्य विचारों के समान हैं, उन्हें चूड़ाकर्म-मुण्डन संस्कार द्वारा सुविचारवान बनाया जाता है। साथ ही नर-नारी के व्यक्तित्व में सौन्दर्य की वृद्धि भी होती है। इसी प्रकार वन-प्रान्तर में उगती-बढ़ती घास भी बाह्य सामाजिक विचारों की संकेतक है। यह घास भी लम्बी होकर गिरने लगती है। इसे स्थान-स्थान पर उस घास से बांध दिया जाता है, जो सर्वाधिक पुरानी व अपेक्षाकृत अधिक लम्बी होती है। यही बढ़ी हुई पुरानी घास समाज के पूर्वजन्मा पितरों का प्रतिरूप होकर नवजन्मा घास (सन्तति) को अपने शुभ विचारों से नियन्त्रित करती है।

मनुष्य के प्रकरण में प्राण-प्रपोषित शुद्ध वायु और अपान-प्रदूषित गन्ध वायु मानी जाती है। प्राण का संभरण किया जाता है और अपान का निष्कासन किया जाता है, मुख्य रूप से इसका निष्कासन नासिका एवं गुदा के द्वारा होता है। मन्त्र

में वर्णित यही प्रक्रिया यदि उलट जाती है तो त्याज्य को ग्राह्य कर लेने से, यह मनुष्य के लिए मरणान्तक स्थिति होती है।

यहाँ पर एक हास्य प्रसंग याद आ गया। आचार्य मुरारीलाल ने प्रोफेसर गोपीनाथ से कहा—आइए ‘पान’ खा लीजिए, उन्होंने उत्तर दिया मैं ‘पान भक्षी’ नहीं हूँ। आचार्य जी ने फिर व्यंग्य कस दिया— तो आप ‘अपान भक्षी’ हैं? इस पर प्रोफेसर ने और तगड़ा व्यंग्यबाण छोड़ दिया—श्रीमान! इसे आप अपने मुख में ही रखिये। प्राण-अपान की प्रक्रिया उलट जाने से मानव की मृत्यु अवश्यम्भावी है, इसी प्रकार विषमलैंगिकता यदि समलैंगिकता में बदल जाती है तो समग्र मानवता की ही मृत्यु सुनिश्चित समझनी चाहिए। जब गर्भाधान ही नहीं होगा तो सन्तान कहाँ से होगी? सामवेद (502) मनुष्य की गरिमा का गान करते हुए उसे सूर्य पुत्र बने रहने की प्रेरणा प्रदान करता है।

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः।

रुचे जनन्त सूर्यम्॥

अर्थात् सोम (वीर्य) के संयम से कांति व शोभा के लिए संयमी पुरुष अपने अन्दर एक विशिष्ट दृष्टिकोण को उत्पन्न करते हैं जिससे वे विषयों से अबद्ध रहकर अपने ज्ञान को उत्तरोत्तर उददीप्तकर दिव्य गुणों को अपने अन्दर धारण करते हैं। वे पुराने व वृद्ध होकर भी युवानुरूप जीवन-निर्माण की सद् शिक्षाओं की चेतना से नवयौवनधारी सन्तति को सात्विक ऊर्जा से भरपूर बनाये रहते हैं। वेदानुमोदन से अनुप्रमाणित होकर महाभारतकालीन प्रखर नीतिवक्ता (वि.नी. 4.52) महात्मा विदुर भी इस तथ्य का समर्थन करते हुए कह बैठते हैं

बुद्ध्या भयं प्रणुदितं तपसा विन्दते महत्।

गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति॥

अर्थात् मनुष्य बुद्धि विवेक के द्वारा भय को दूर करता है, तप करके अपने बड़प्पन को प्राप्त करता है और गुरु मार्ग दर्शकों की सेवा से ज्ञान व्यवहार को प्राप्त करता है, तथा योग पूर्वक यम-नियम के पालन से सुख दुःखादि में सम रहकर आत्मिक शान्ति को प्राप्त करता है। यही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से शीर्षक में—“हंस चला कौआ की चाल” का सुधार हो जाता है—कौआ-कौआ और हंस-हंस बना रहता है और मानव, वंश का अवतंस बनकर संसार में चमकता है।

‘वरेण्यम्’ अवन्तिका (प्रथम)

रामघाट मार्ग, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

दिव्यगुणों से शरीर, मन व बुद्धि स्वस्थ होते हैं

● डॉ. अशोक आर्य

मानव की रक्षा उस के अन्दर के दिव्य गुणों से होती है। दिव्य गुण उस व्यक्ति को ही प्राप्त होते हैं जो व्यक्ति श्रम करता हो तथा संयम पूर्वक रहता हो। इन दिव्य गुणों से ही मानव का शरीर, उसका मन तथा उसकी बुद्धि को स्वास्थ्य लाभ मिलता है। इस बात को यह मन्त्र इस प्रकार व्यक्त करता है:-

ओमासश्चर्षणीधत्तो विश्वेदेवास आ गत।

दाश्वांसोदाशुषः॥ ऋग्वेद १.३.७॥

इससे पूर्व मंत्र में सात्विक भोजन से जीवन को सात्विक बनाने का उपदेश किया गया था। इस बात को ही आगे बढ़ाते हुए इस मंत्र में दो बातों को समझाया गया है:-

1. दिव्यगुणों की प्राप्ति

अपने को सात्विक भोजन के द्वारा सात्विक बना कर जीव परम-पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हुए सर्वप्रथम यह कहता है कि हे दिव्यगुणों । तुम मुझे प्राप्त होवो, मुझे मिलो, मैं तुम्हारा अधिकारी बनूँ। अर्थात् इस संसार में जितने भी दिव्य गुणों का भण्डार है, वह सब गुण मैं प्राप्त करके इन दिव्य गुणों का भण्डारी बनूँ। यह दिव्य गुण केवल और केवल सात्विक व्यक्ति को ही, सात्विक जीव को ही मिलते हैं। मैंने सदा सात्विक भोजन किया है। मैंने सदा सात्विक अन्न ही ग्रहण किया है। इसलिए मेरे अन्दर दिव्य गुणों को पाने की योग्यता आ गई है, इसलिए मैंने इन्हें प्राप्त करने का, इन्हें प्रभु से मांगने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया है। तब ही तो मैं प्रार्थना करते हुए कह रहा हूँ कि हे प्रभु! जितने प्रकार के भी दिव्य गुण हैं, वह सब मुझे प्राप्त करावो।

प्रश्न उठता है कि दिव्य गुण कहते किसे हैं? दिव्य का अभिप्राय है किसी देवता के द्वारा दिए जाने वाले तथा गुण का अर्थ है अच्छाई। देवता से अभिप्राय है जो देने का कार्य करता है। हम परमात्मा को तो देवता कहते ही हैं क्योंकि वह परमात्मा हमें सदा ही कुछ न कुछ देता ही रहता है। इस प्रकार अन्य भी बहुत से ऋतु हैं, जो हमें कुछ न कुछ देते ही रहते हैं यथा वायु व जल हमें जीवन देते हैं, हे भी देवता हैं। माता-पिता व गुरुजन

हमें ज्ञान देते हैं, वह भी हमारे लिए देवता हैं। अन्य भी जहाँ से हमें कुछ मिलता है, उन साधनों को हम देवता ही कह सकते हैं।

ये दिव्य गुण हमारे जीवन में क्या करते हैं? इनसे हमें क्या लाभ होता है? इनका हमारे जीवन में क्या प्रयोजन है?, यह भी हमें जानने का मार्ग यह मन्त्र बता रहा है। मन्त्र कह रहा है कि यह दिव्य गुण हमारा रक्षण करने का कार्य करते हैं अर्थात् यह दिव्य गुण हमारी रक्षा करते हैं।

प्रश्न फिर उठता है कि यह गुण हमारी रक्षा कैसे करते हैं? हम जानते हैं कि दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए हमें संघर्ष करना पड़ता है, मेहनत करती होती है, तप करना होता है। यहाँ तक कि मुँह तक के स्वाद को छोड़ कर सात्विक भोजन पर निर्भर होना पड़ता है, रूखा-सूखा खाना पड़ता है। इस सब से एक बात तो स्पष्ट है कि जिन गुणों को पाने के लिए हम इतना संघर्ष करते हैं, यदि उन गुणों का हमारे जीवन में कुछ उपयोग ही न हो तो उन्हें पाने के लिए हम इतना संघर्ष क्यों करें? इतना समय क्यों लगायें? इतनी शक्ति व्यर्थ में क्यों नष्ट करें?

यह सब जानने के लिए हमें दिव्य गुणों की उपयोगिता को जानना होगा। दिव्य गुणों की सबसे उत्तम व सबसे प्रमुख उपयोगिता यह कि यह गुण हमारी रक्षा करने वाले होते हैं तथा हमारी रक्षा का कार्य करते हैं। इन दिव्य गुणों से ही हमारा शरीर रोगों से बचा रहता है। शरीर में किसी प्रकार का भी रोग प्रवेश नहीं पाता। हम सदा निरोग रहते हैं, स्वस्थ रहते हैं। यह दिव्य गुण ही हैं जिन के कारण हमारे मन की सब मलिनताएं धुल कर नष्ट हो जाती हैं। मन में किसी भी प्रकार की मैल नहीं रहती।

इन दिव्य गुणों का तीसरा तथा सब से प्रमुख कार्य है कि जिसके पास यह दिव्य गुण होते हैं, उसकी बुद्धि में किसी प्रकार की मन्दता नहीं आती, किसी प्रकार की मलिनता नहीं आती। मन्द बुद्धि व्यक्ति समाज के साथ नहीं चल पाता। मन्द बुद्धि व्यक्ति समाज से बहुत पीछे रह जाता है, उसकी अपनी इच्छाएं क्या हैं,

इसका भी उसे ठीक से ज्ञान नहीं होता। इस कारण कोई भी व्यक्ति मन्द बुद्धि नहीं होना चाहता। स्कूल की कक्षा में भी जो बालक मन्द बुद्धि होता है, उसका सब बालक उपहास उड़ाते हैं, उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। कोई नहीं चाहता कि उसकी कभी खिल्ली उड़े। इससे बचने का एक मात्र साधन है दिव्य गुणों की प्राप्ति। जिसके पास दिव्य गुणों का भण्डार होता है, उसकी बुद्धि बड़ी तेजी से चलती है। वह बड़ी से बड़ी समस्या को मिनटों में हल करने की क्षमता रखता है। वह विकट स्थिति में भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ता। इस प्रकार दिव्य गुणों के स्वामी की बुद्धि तीव्रतम हो जाती है।

यह दिव्य गुण मनुष्य को धारण करते हैं, आगे ले जाते हैं, उनकी उन्नति का कारण बनते हैं। जो व्यक्ति कृषि करते हैं, जो व्यक्ति मेहनत व मजदूरी करते हैं, श्रम करते हैं, ऐसा करने वालों की यह दिव्य गुण रक्षा करने का कार्य करते हैं। दिव्य गुण का भाव ही वास्तव में श्रम से होता है। जो व्यक्ति सदा श्रम करता है, मेहनत करता है, परिश्रम करता है, वह ही इन दिव्य गुणों को पाता है, जो आलसी बनकर पड़ा रहता है, वह इन गुणों का कैसे पा सकता है? अर्थात् नहीं पा सकता। यह कहा भी जाता है कि आलसी व्यक्ति दुर्गुणों का स्वामी होता है तो पुरुषार्थी व्यक्ति सद्गुणों की खान होता है। आलसी को कहीं भी कोई सम्मान नहीं मिलता जबकि सद्गुणों से युक्त व्यक्ति का, दिव्यगुणों से युक्त व्यक्ति का सर्वत्र सम्मान होता है। दूर-दूर तक उस का यश व कीर्ति फैले होते हैं, सब स्थानों पर उसके गुणों की चर्चा होती है तथा सब लोग उसका सान्निध्य पाने के अभिलाषी होते हैं।

दानशील बनें

इस मन्त्र में दूसरा उपदेश देते हुए बताया गया है कि हे विश्व देवो! हे प्रभु! आप हमें सब कुछ देने वाले हो। आपकी ही कृपा से हमें सब कुछ मिलता है। यदि आप का वरद-हस्त हमारे ऊपर न हो तो हमें कुछ भी नहीं मिल सकता। भाव यह है कि जब एक व्यक्ति दानशील होता है, दाता होता है, देवता का कार्य करता है तो

वह व्यसनों में रम ही नहीं सकता। दाता, दान देने वाला, अपने अतिरिक्त धन को, अपनी अतिरिक्त वस्तुओं को दान कर के दूसरे लोग, जो साधन हीन होते हैं, उनका सहयोग कर उनकी आवश्यकताएं पूरा करने में लगाता है। जब वह अपने अतिरिक्त धन को दूसरों की सहायता में लगा देता है तो उसके पास इतना धन शेष रहता ही नहीं कि वह अपने जीवन को व्यसनों में धकेल सके। उसके पास इतना समय भी नहीं होता कि वह व्यसनों में उलझ कर अपने समय को नष्ट करे। यदि वह इन बुराईयों में लगता है तो वह दान नहीं कर सकता और यदि इन व्यसनों से बचता है तो दाता बन जाता है। दाता के रूप में उसका यश, कीर्ति दूर-दूर तक चली जाती है। लोग उसकी शरण में आने लगते हैं।

अतः मन्त्र कह रहा है कि हे प्रभु! आप सब कुछ देने वाले हो। आप देने वाले स्वभाव के, दाता स्वभाव के हो। जब एक व्यक्ति दाता बनकर अपने अन्दर के दोषों को धो देता है तो वह दान-वृत्ति वाला होने से लोभी नहीं रह सकता क्योंकि लोभी तो कभी दाता बन ही नहीं सकता, कोई दान का कार्य कर ही नहीं सकता। अतः दाता कभी लोभी नहीं होता। लोभ का उसकी वृत्तियों में नाश होने से वह सब प्रकार के व्यसनों से ऊपर उठ जाता है, उसमें किसी प्रकार व्यसन के लिए कोई स्थान नहीं रहता। व्यसनों से ऊपर उठने के कारण, दाता बनने के कारण वह अपने शरीर में शक्ति एकत्र करने में, सोम रक्षण करने में सक्षम हो जाता है तथा भरपूर मात्रा में सोम की रक्षा कर लेता है। सोम एकत्र कर लेता है। यह ही उसके जीवन का यज्ञ होता है। जो इस प्रकार का यज्ञ करता है उसके यज्ञ में सब प्रकार के दाता, सब प्रकार के दानी, सब प्रकार के देव भाग लेते हैं, उपस्थित होते हैं। इस सब का भाव यह है कि जब मनुष्य अपने शरीर में सोम की रक्षा कर लेता है तो उसके जीवन में दिव्य गुणों का विकास होता है तथा वह धीरे-धीरे इन दिव्य गुणों का स्वामी बन जाता है।

पाकेट-1 प्लॉट 61, प्रथम तल
रामप्रस्थ ग्रीन वैशाली-201010
गाजियाबाद, चलभाषः 9718528068

स्वामी विरजानन्द, आचार्य ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की कड़ी में सुश्री बहिन प्रज्ञा

● गजानन्द आर्य

वेदार्थ की कुंजी लेकर स्वामी दयानन्द अपने कार्य क्षेत्र में उतरे। वेद संहिताओं को प्राप्त किया। अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु, निरुक्त, दर्शन और उपनिषदें मानस पटल पर स्थापित करके वेदों के गूढ़ रहस्यों को खोलना उनके लिए बहुत सरल हो चुका था। यह निश्चय हो चुका था कि सब सत्य विद्याओं का मूल वेद है। यह भी अनुभव होने लगा कि अविद्या पाखण्ड और अज्ञान फैलाने का मुख्य कारण वेदों को भूल जाना है। वेद की ओर ले जाने के लिए कई स्थानों पर संस्कृत पाठशालाओं का खोलने का प्रयोग करके देखा, किन्तु अधिक सफलता नहीं मिली। वेदाङ्ग प्रकाश के नाम से व्याकरण के छोटे-बड़े 16 ग्रन्थ तैयार किये, ताकि लोगों का पाणिनी सूत्रों और अष्टाध्यायी के प्रति अनुराग बढ़े।

इतने बड़े वेदोद्धारक संन्यासी का लोगों ने वेदभाष्य का ऐतिहासिक कार्य पूरा नहीं होने दिया। वही हुआ जो स्वामी शंकराचार्य के साथ हुआ था। असमय में ही वह अनुपम विद्वान् अपने शरीर को छोड़कर चला गया। वेदभाष्य अधूरा रह गया। ऋषि अपने पीछे आर्यसमाज के माध्यम से अनेक विद्वान् साधु संन्यासी और कार्यकर्ताओं की विशाल शक्ति छोड़कर गये, किन्तु देश के सर्वांगीण सुधार का कार्य इतना अधिक करना बाकी था, कि आर्यसमाज की पूरी शक्ति सुधार कार्यों में लग गई। स्कूल कॉलेज भी खुलते गए, जिससे वैदिक सभ्यता संस्कृति की सुरक्षा हो सके। गुरुकुल भी खुले उनमें वेद का अध्ययन भी चला। आलस्यवश अथवा सुविधावश वेदार्थ कुंजी का प्रयोग गुरुकुलों में कमजोर होने लगा। हालांकि वेद सर्वत्र सुलभ होने लगे, किन्तु सब सत्य विद्या के प्रत्यक्षीकरण का अभाव हो गया। जो जिसने वेद की सुन्दर-सी व्याख्या लिख दी, उसी पर मुग्ध होने लगे। महर्षि की तरह व्याख्या के समर्थन में आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण देने का सिलसिला मन्द पड़ गया। ऐसा लगने लगा कि भानु को ग्रहण लग गया है। वेदार्थ की कुंजी कहीं विस्मृत हो गई है सर्वथा लोप नहीं।

शिक्षण संस्थाएँ प्रायः सभी आर्ष पद्धति के इस पाठ्यक्रम के प्रति उदासीन थी, किन्तु यत्र तत्र कुछ विद्वानों के पास विद्या जीवित थी। उनमें से एक स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती कनखल हरिद्वार

में थे, जिन्होंने अष्टाध्यायी के 100 सूत्रों को कण्ठस्थ किया था। प्रतिदिन पेड़ पर बैठकर। ऐसे विद्वान् के पास एक बीस वर्षीय युवक अष्टाध्यायी पढ़ने को आया। अष्टाध्यायी के प्रति आकर्षित इस युवक को एक अच्छे गुरुकुल ने यह कहकर प्रवेश नहीं दिया था कि अष्टाध्यायी से व्याकरण नहीं आती। युवक का संकल्प था कि अष्टाध्यायी के 32 पादों में से यदि एक पाद भी इस जन्म में पढ़ सकूँगा तो जीवन सफल मानूँगा और शेष पाद अगले जन्म में सही। इस युवक का नाम आगे चलकर ब्रह्मदत्त जिज्ञासु हुआ। जिसका बचपन का नाम लभुराम था, जिनके माता-पिता पंजाब के एक गाँव में अनपढ़ किसान थे। जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी संस्कृत से कोसों दूर यह बालक कभी संस्कृत का महान् पण्डित बनेगा, कोई क्या कल्पना कर सकता था। इतना ही नहीं 8 वर्ष की आयु पहुँचते-पहुँचते वह माता-पिता से भी विहीन हो चुका था। ठोकरें खाते हुए इस बालक का बचपन बीता यौवन आया। यौवन के दिनों ने सत्संग और स्वाध्याय की ओर रुचि बढ़ा दी। आर्य समाज से प्रभावित हुआ, इसी प्रभाव ने अष्टाध्यायी के प्रति निष्ठावान बना दिया। लगभग 6 वर्षों तक स्वामी पूर्णानन्द जी के सान्निध्य ने उनको व्याकरण का पूर्ण विद्वान् बना दिया। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज, पं. शंकरदेव जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा महात्मा हंसराज आदि धार्मिक पुरुषों का सत्संग एवं धनीमानी सज्जनों के आर्थिक सहयोग ने श्री जिज्ञासु जी को व्याकरण के क्षेत्र में सक्रिय कर दिया। उसी सक्रियता से लाहौर में बहुत कुछ अध्ययन-अध्यापन कार्य हुआ।

देश विभाजन ने वह सब व्यवस्था भंग कर दी, निदान काशी में इस विद्वान् को स्थायी शरण मिली। छात्र आये पढ़ने लगे विद्या के गढ़ काशी को अष्टाध्यायी का अनूठा अध्यापक मिल गया। छात्र आने लगे, सनातनी हो अथवा आर्यसमाजी पात्रों के चयन में वहाँ कोई भेद नहीं था। देववाणी संस्कृत तथा वेदार्थ की कुंजी आर्ष व्याकरण का विस्तार ही उनका मुख्य लक्ष्य था। अच्छे छात्र तैयार हुए, जिन्होंने वेद और स्वामी दयानन्द के अधूरे कार्य को हाथ में लिया। पाणिनी महाविद्यालय के नाम से जिज्ञासु जी का शिक्षा केन्द्र प्रसिद्ध होने लगा।

जिज्ञासु जी के विद्यालय में छात्रों

की संख्या बढ़ती गई, उनके पास अमीर-गरीब का कोई भेदभाव नहीं था। भेद लड़के-लड़कियों का भी नहीं था। यह ज्ञान जन-जन तक फैलाना ही उनका उद्देश्य था। सरल विधि एवं अल्पकालीन शिक्षार्थियों के लिए उन्होंने एक सरल पाठ्यक्रम भी तैयार करके प्रकाशित कराया। “संस्कृत पठन-पाठन की सरलतम विधि” नाम की पुस्तक तैयार करके उन्होंने भारत सरकार के शिक्षा मन्त्री को भी भेंट की ताकि देश के विद्यालयों में संस्कृत का प्रवेश हो सके। जिज्ञासु जी का शिक्षण प्रवचन और लेखन विद्वदसमाज में बहुत ख्याति प्राप्त था, इसी ख्याति में एक नया अध्याय जुड़ने का प्रसंग आ पहुँचा। सतना की एक विधवा माता अपनी तीन पुत्रियों और एक पुत्र को लेकर काशी आ पहुँची, विद्यालय के समीप एक मकान किराये घर लेकर रहने लगी। पूर्ण परीक्षित जिज्ञासु जी के शरण में बच्चों को सौंपकर माँ आश्वस्त हो गई। यह ईश्वर की ही कृपा थी कि बच्चों को धार्मिक माँ मिली थी, जिसने अपने बच्चों को एक धार्मिक आचार्य के अधीन कर देना श्रेयस्कर समझा। आचार्य ने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का भार सहर्ष स्वीकार किया। आजीवन इन बच्चों को इतनी योग्यता से सँभाला कि मरणोपरान्त उनके डेस्क से एक पत्र उनकी माँ के नाम से लिखा मिला कि।

“मैं रहूँ या न रहूँ इन बच्चों का भविष्य तो उज्ज्वल मुझे दीख ही रहा है। ये भूखे नहीं मरेंगे। ऐसे योग्य ऋषि दयानन्द के उद्देश्य वाले सच्चरित्र व्यक्ति खोजने से नहीं मिलेंगे। इनको पाकर आर्यसमाज या आर्यपुरुष कृतकृत्य होंगे। इनको आँखों पर उठायेंगे। कोई आँखों पर न भी उठाए ये स्वयं ही ऋषि दयानन्द के उद्देश्य की पूर्ति इतनी कर सकेंगे कि आर्यसमाज चकित रह जायेगा। आज इस पूर्ण आशा के साथ मेरे यह शब्द हैं, जिनको भविष्य ही बतलायेगा।

पण्डित जिज्ञासु ने यह पत्र अगस्त 1964 में ही लिखकर डेस्क में छोड़ दिया था। जैसे कोई भविष्यवाणी लिखकर रखी हो। माता के नाम लिखा वह पत्र सार्थक हो गया, जब इनकी दो सन्तानें सुश्री प्रज्ञा और सुश्री मेधा ने अपना जीवन इसी शिक्षा हेतु समर्पित कर देने का निश्चय किया। 8 वर्षों तक दोनों लड़कियाँ आचार्य के सान्निध्य में रहकर

योग्य से योग्यतर बनती चली गई। विधवा माँ ने रुग्ण आचार्य के भोजन छादन की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली थी। सन् 1956 में प्रविष्ट इन कन्याओं का समावर्तन संस्कार न कराकर पूज्यवर गुरु जी 1964 में स्वयं ही अन्तिम संस्कार करा चल दिये। उस समय प्रज्ञा जी की आयु लगभग 27 वर्ष की थी, किन्तु छोटी बहन मेधा तो मात्र 16 वर्ष की रही। 8 वर्ष में गुरु जी ने जो सिखाया वही सीख उनकी निधि बन गई।

स्वर्गीय गुरु जी के कार्य में गति लाने के लिए सर्वोच्च योजना जिसका सूत्रपात इनसे हुआ, वह है काशी में “श्री जिज्ञासु स्मारक पाणिनी कन्या विद्यालय” की स्थापना। उसी काशी में जहाँ ब्राह्मण कुल में जन्मे ही वेद पढ़ने आते थे तथा जहाँ कन्याओं का वेद पढ़ना सर्वथा निषेध था। इस सर्वथा निषेध को भंग किया था आचार्य ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने काशी में पाणिनी महाविद्यालय का शुभारम्भ करके, जिसमें प्रवेश पाने का अधिकार प्रत्येक मानव को था। इसी निषेध को भंग करने हेतु पं. जिज्ञासु जी रुग्ण अवस्था में भी काशी छोड़कर अन्यत्र स्थान पर नहीं गये। एक बार महात्मा प्रभु आश्रित जी ने उनको गुरुकुल खेड़ाखुर्द अथवा रोहतक में निवास करने का सुझाव जब दिया तब उनका उत्तर था कि “भले ही स्वास्थ्य ठीक न रहे, किन्तु काशी को छोड़ नहीं सकता, क्योंकि यहाँ के ब्राह्मण केवल ब्राह्मण जाति के विद्यार्थियों को ही पढ़ाते थे। इस अविद्या का नाश तभी हो सकता है, जब मैं यहाँ रहूँ।” उनका विद्यालय चलता रहा कालान्तर में उनके निधन के पश्चात् विद्यालय स्थानान्तरित कर देना पड़ा।

काशी को सम्भालने का दायित्व आचार्य की अन्तर्वासी योग्य विदुषी सुश्री प्रज्ञा जी पर आ गया। बहुत जटिल कार्य था। एक नारी वेदों को पढ़ाने के लिए काशी नगरी में अपना विद्यालय खोल बैठे। शायद उस समय के लोगों को इस सूचना पर विश्वास भी नहीं हुआ होगा। किन्तु सन् 1971 में ही जिज्ञासु स्मारक पाणिनी कन्या महाविद्यालय का शुभारम्भ कर दिया, इस वीरांगना ने। ईश्वर पर अटल विश्वास, वेद विद्या पर पूर्ण निष्ठा और अपनी अनुजा सुश्री मेधा जी का सहयोग ही उनकी पूरी शक्ति थी। धनाभा

मु

झे अनुमान नहीं था कि जिस मुलाकात को मैं महज औपचारिक समझ रहा

था, वह एक 'बैठक' एक 'गोष्ठी' में बदल जावेगी। बात यह थी कि मुलाकात जिन महानुभावों से होनी थी और जो पारिवारिक गोष्ठी में परिवर्तित हुई, वह 42 वर्ष के पश्चात् हो रही थी। बिना नाम व परिचय दिए बात ढंग से बनेगी नहीं और यदि लेख प्रकाशित होने पर थोड़ी-बहुत सुननी पड़ेगी तो उसे सहन करने का मन बना लिया है।

डी.ए.वी. उ.मा. विद्यालय, नयाबाजार, लश्कर, ग्वालियर के सहपाठी और अब बंगलुरु निवासी, इंजीनियरिंग में पी.एच.डी. राजकुमार गुप्ता के बहनोई श्री सन्तोष जी भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र मुम्बई से सेवानिवृत्त वरिष्ठ वैज्ञानिक और उनकी विदुषी पत्नी बीना ग्वालियर के अल्प प्रवास पर आए हुए थे और भतीजी श्रीमती दीपा व उनके पति श्री गोविन्द जी के निवास पर ठहरे हुए थे। मीटिंग का आयोजन करने वाली उनकी ही भानजी सुश्री शिखा थी। मेरे साथ मेरी 42 वर्ष से संगिनी, पत्नी स्वदेश भी थी। उनके बिना मेरा कहीं भी आना जाना नहीं होता है।

मौसम दो दिन से खुशनुमा चल रहा था। बसंत पंचमी निकल चुकी थी। दोपहर ज्यादा गर्म होने लगी थी कि अचानक शिमला में तगड़ा हिमपात हुआ और मौसम का मिजाज़ बिगड़ गया। स्वदेश पर ठंड का असर दो दिन पहिले ही हो चुका था फिर भी उनका साथ चलने का आग्रह था। मैं उनको आश्चर्य कर चुका था कि घंटे-आध घंटे में लौट आवेंगे। उन्होंने कपड़े भी शाम के अनुरूप ही पहिने। महिलाओं को कपड़े पहनने से बहुत एतराज होने लगा है।

औपचारिक नमस्कार-चमत्कार, कुशल-क्षेम, के पश्चात् मैंने जब उनको अपनी दोनों पुस्तकें ऋषि-तर्पण व ऋषि-अर्पण भेंट की तो दोनों ने ही कहा कि ये पुस्तकें बंगलुरु में अक्टूबर 2013 में ही पढ़ चुके हैं।

बीना ने कहा— आपके लेखन में व्यक्तिगत संदर्भ बहुत होते हैं। मैंने कहा— लेखन को प्रामाणिकता प्रदान करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। कालजयी बंगला गल्पकार शरतचन्द्र चटर्जी ने लेखन कार्य प्रारम्भ ही किया था कि एक दिन सड़क पर उनके अध्यापक मिल गए। ज्ञातव्य है कि शरत केवल मैट्रिक पास थे। अध्यापक ने कहा— न्योड़ा (इसी नाम से शरत पुकारे जाते थे) सुना है कि तुम कहानी-किस्से लिखने लग गए हो। शरत चुप। अध्यापक जी ने आगे कहा— ध्यान रखना, वही लिखना जो जीवन में अनुभूत हो। कहानी लेखक को यह सलाह मन में घर कर गई और जो कुछ लिखा वह अनुभूत सत्य को ही जामा पहिना था जिसके कारण वह प्रथम कहानी से ही नोबल पुरस्कार से

पुरस्कृत कविकुल गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रशंसा के पात्र बने।

मेरा लेखन तो बिलकुल धरातली है। महर्षि दयानन्द के विचारों का प्रचार-प्रसार बिना संस्कृत ज्ञान के, बिना वेदों का सांगोपांग-अध्ययन किए, करता हूँ। इस क्षेत्र में दिग्गज मनीषियों का दबदबा है। उनके ही लेख पढ़े जाते हैं, उनकी ही पुस्तकें बिकती हैं। फिर भी बिना किसी को गॉड फादर बनाए 2002 में लेखन कार्य चल पड़ा। कुछ विराम के पश्चात् अब अविराम गति से चल रहा है। आर्य जगत् व आर्य जगत् से इतर की पत्र-पत्रिकाएँ लेख छाप भी रही हैं। अस्तु।

अल्प विराम के लिये खेद है। मैं बीना को बता रहा था कि रचना की विश्वसनीयता के लिए प्रामाणिकता का होना जरूरी है। मैंने बताया कि 'अल्पज्ञ' के समापन के लिए मैं व्यक्ति और ईश्वर के सम्बन्ध कितने अधिक आत्मीय होते हैं और ईश्वर उनकी आत्मीयता, गोपनीयता की कितनी तत्परता, कुशलता और अविश्वसनीय सच्चाई से रक्षा करता है, यह बताना चाहता था इसलिए मैंने लिखा था— 'मैंने जीवन में कितना कीचड़ लपेटा है, इसे मैं जानता हूँ या मेरा परमात्मा। अन्य कोई नहीं, पत्नी भी नहीं। पहले मैंने अन्तिम शब्दावली 'पत्नी भी नहीं' काट दिया था। इस भय से कि कहीं वह शंकाग्रस्त न हो जावे। दो दिन रुकने के पश्चात् मैंने पूछ लिया—क्या मैं ये शब्द जोड़ दूँ? उसने अप्रसन्न होने के बजाय कहा— जब वास्तविकता यही है तो लिखने में क्यों संकोच? बिन्दास लिखो और मैंने लिखा। एक सुधि पाठक ने फोन पर कहा कि आश्चर्य है कि आपने सच्चाई को इस हद तक स्वीकार किया है। श्रोतागण पर्याप्त आयु के विवाहित थे, चैंके! पत्नी ने छौंका लगाया— जब जीवन की वास्तविकता ही यह है तो स्वीकार करने में क्यों संकोच? मीरा ने कहा— महिलाएँ भी तो बहुत सारी बातें पतियों से गोपन रखती हैं। कभी-कभी तो गोपन रखना अत्यावश्यक हो जाता है।

पुस्तकों के अतिरिक्त मैंने उन्हें अपनी नौ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित नवीन रचना 'हम कैसा ईश्वर चाहते हैं', भेंट की। बीना ने कहा— वेद के जिस रूप को महर्षि दयानन्द के शब्दों में प्रस्तुत किया है, वही तो ईश्वर का सही स्वरूप है। मैंने कहा पर कौन मानता है? और कौन स्वीकार करता है? मैं यह भलीभाँति जानता था कि यह पूरा परिवार मूर्तिपूजक है, फिर भी मैंने आगे कहा शिरडी के साँईबाबा पर 25 दिसम्बर 13 से 1 जनवरी 14 तक एक सप्ताह में 17 करोड़ का चढ़ावा मिला। लाखों से पटे केदारनाथ धाम की पूजा-अर्चना शीघ्र

चालू होनी चाहिए, क्योंकि वहाँ प्रतिदिन एक लाख का चढ़ावा आता है। ये सब प्रतिष्ठित मंदिर 'व्यापारिक केन्द्र' हैं। बीना ने कहा— मंदिरों के आस-पास गंदगी कितनी होती है। संतोष जी ने उत्तर दिया— तुमने गंदगी पर फोकस किया, तुम्हें गंदगी दिखी अगर तुम मूर्ति पर फोकस करती तो तुम्हें भगवान दिखते। यह बात वह व्यक्ति कह रहा था, जिसने महर्षि कृत यजुर्वेद भाष्य एवं ऋग्वेद भाष्य का गहराई से अध्ययन किया हुआ था और सायण, महीधर के भाष्यों की तुलना में महर्षि के भाष्यों की गुणवत्ता के मूलमंत्र-वेद के यौगिक शब्दों के अर्थों का प्रसंगानुसार अर्थ करना, उसे भलीभाँति ज्ञात था। मैंने उदाहरण याद दिलाया—भोजन के समय सैन्धव लाने के लिए कहने पर घोड़ा लाना और बाहर सवारी के लिये जाने के लिए 'नमक' लाना। सैन्धव के दो अर्थ हैं 'घोड़ा' और 'नमक'। महर्षि को इस गहराई तक समझने वाला व्यक्ति मूर्तिपूजा में अपार श्रद्धा रखता है। मैंने मन ही मन अपना माथा ठोक लिया। बेटा, अब क्या बोलोगे? मैं चुप हो गया। मैं मन ही मन सोचने लगा कि जन्म जात संस्कारों का अभिष्ट असर कितना प्रबल होता है कि उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी मूर्ति पूजा छूटती नहीं है। यही हाल लंदन से इंजीनियरिंग में पी.एच.डी. किये हुए, डी.ए.वी. स्कूल में पढ़े हुए मित्र का है। न छूटने का कारण मेरे सुपुत्र अमित ने अमरीका प्रवास में इस रूप में बताया था कि व्यक्ति, पूजा-पाठ वही करता है जो उसने परिवार में देखा। यदि आप हिन्दु सनातनी परिवार में उत्पन्न हुए हैं तो मूर्ति पूजा करेंगे। यदि मुसलमान अथवा ईसाई परिवार में जन्म लेते तो उनकी पूजा पद्धति अपनाते। युवावस्था प्राप्त होने पर परम्परा ढोए चले जाते हैं। अधिकांश लोग सोच-विचार कर ईश्वर को नहीं मानते। इस संबंध में बात भी नहीं करना चाहते।

शिखा की शिक्षा एम.एम.सी. भौतिकी है। अच्छे विद्यालय में अध्यापन करती है, आ गई थी। उसने विषयांतर कर दिया। दो विषयों पर चर्चा चाही। एक 'कर्मफल सिद्धांत' और दूसरा नई पीढ़ी को वैदिक मान्यताओं, भारतीय सभ्यता की गुणवत्ता में कैसे भरोसा दिलाया जावे। उसे आश्चर्य हुआ कि कर्मफल सिद्धांत जिस रूप में भारतीय समाज में मान्य है, स्वीकृत है, वैसा विश्व की किसी भी सभ्यता, संस्कृति में स्वीकृत नहीं है। जो ईसा का तो पुनर्जन्म मानते हैं और अन्य किसी मनुष्य का नहीं और जो मृत्योपरांत कबर से सीधा उठाकर अल्लाहताला के समक्ष प्रस्तुत कर दिये जावेंगे (कयामत के दिन) और रसूल की सलाह जिसका आधार अल्लाहताला और

रसूल मुहम्मद पैगम्बर पर 'ईमान' लाना है, पर जन्मत या दोज़ख भेज दिये जावेंगे। वहाँ उन्हें सदा जवान रहने वाली हूरें और गिलमान (अल्प आयु के लड़के) मौज मस्ती के लिए मिलेंगे। शहद और अंगूरी शराब की नदियाँ मिलेंगी। शिखा को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर उसके अंत तक जीवात्मा को निरन्तर जन्म और मृत्यु के प्रवाह में बहना पड़ेगा। लाखों करोड़ों में से कोई योगी मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण और महर्षि दयानन्द प्रभृति ही मुक्ति, मोक्ष के अधिकारी हो सकते हैं और वह भी अनंतकाल के लिए नहीं। मोक्ष की अवधि पूर्ण होते ही उन्हें पुनर्जन्म लेना पड़ता है। शिखा भौचक! पूरी बात पचाने में असमर्थ।

शिखा ने दूसरा विषय निकाला भौतिक वादी पश्चिम जगत् को पूर्व की सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता का विश्वास कैसे दिलाया जावे और क्या यूरोप और अमरीका की ओर अंधी दौड़ में जाती युवा पीढ़ी को कुछ समझाया जा सकता है? मैंने कहा दोनों जगत् सभ्यता और संस्कृति के दो छोर हैं। भारत में कोई नहीं कहता कि यह मेरे पाँच वर्ष की पत्नी है या पाँच दिन की। पर प्रसंग पड़ने पर अमेरिकावासी बड़ी मासूमियत से इस बात को स्वीकार करते हैं। पहिली पत्नी के बच्चे, पहिले पति के बच्चे या दूसरी और तीसरी के जब एक छत के नीचे आ जाते हैं तो क्या संयुक्त परिवार का वही वातावरण मिल सकता है जो हमारा यहाँ मिलता रहा है, जो महानगरों में मिट चुका है और मध्यम शहरों में पाँव पसार रहा है। अमरीका, अनेक राष्ट्रों से, विभिन्न संस्कृतियों से आए हुए अप्रवासियों का राष्ट्र है और संस्कृति के हिसाब से शैशवावस्था में है। उसे यह नया आकार धारण किए हुए लगभग 200-250 वर्ष ही हुए हैं और इन सब मत-मतान्तरों यहूदी, ईसाई व इस्लाम आदि की आयु 4500 वर्ष के अन्दर ही है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ही 5-6 हजार वर्ष पूर्व के हैं और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की कालगणना लाखों वर्षों में की जाती है। युवा पीढ़ी पैसे और केवल पैसे के लिए अमरीका भाग रही है। इसमें हमारे परिवार के बच्चे भी शामिल हैं। सही रास्ता बताना हमारा काम है। हम अपने काम करें, उन्हें अपने रास्ते पर चलने दें। ईश्वर ही सद्बुद्धि देगा, कब देगा वही जाने।

ठण्ड बढ़ती जा रही थी, शीत लहर चल पड़ी थी। चर्चा तो और चलती पर ड्रायर नहीं मिलने पर पत्नी को स्कूटर पर लाया था; उसकी शीत के कारण व्यग्रता बढ़ रही थी। घर के लिए निकल पड़े।

22, नगर निगम क्वार्टर्स, जीवाजीगंज,
लश्कर, ग्वालियर 47401 म.प्र.
मोबाइल 9516622982

पृष्ठ 03 का शेष

हमारी पहुँच का ईश्वर : एक गवेषणा...

करने वाले जितने भी वेदादि शास्त्र हैं, आप्तोपदेश हैं, वे सभी अनुपयुक्त हो जाते हैं।

राग, द्वेष का दुष्परिणाम

महर्षि कपिल ने राग, द्वेषादि से समन्वित व्यक्ति की विनष्ट दशा को व्यक्त करते हुए लिखा है—

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत्।
सांख्य. 4/29

अर्थात् अजवत् = राजा अज के समान, मलिनचेतसि = मलिन चित्त में, उपदेशबीजप्ररोहः = उपदेश रूप बीज का अंकुर, न = नहीं उगता।

वचन का तात्पर्य स्पष्ट है कि राग आदि से दूषित चित्त में ज्ञान, वैराग्य, ईश्वर प्राप्ति आदि के लिए जो उपदेश, उपाय निर्दिष्ट हैं उन उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं होता। ईश्वर प्राप्ति के लिए यम, नियमादि अनुष्ठानों द्वारा अन्तःकरण को निर्मल करना, दुरितों को हटाना अनिवार्य है।

इस प्रसंग में राजा अज का उदाहरण प्रसिद्ध है। राजा अज अपनी भार्या में अत्यन्त आसक्त थे। भार्या के देहान्त होने पर बहुत विह्वल हो गये और उस वक्त आसक्ति से भार्या के अभाव में बहुत दुखी हुए। वसिष्ठ आदि ऋषियों ने उन्हें विवेक, ज्ञान प्राप्त कराने का बहुत प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ हुआ। क्योंकि राजा अज का चित्त विषयासक्ति से आकण्ठ निमग्न था, राग से लिप्त था। विवेक, ज्ञान, ईश्वर प्राप्ति में राग, द्वेषादि बहुत बड़ी बाधाएँ हैं,

जो ईश्वर के सत्य स्वरूप को प्रकट नहीं होने देती।

हमारे मन में राग, द्वेषादि का गोमय भरा हुआ है, वह परमात्मा के ध्यान में नहीं बैठने देता। उत्तम गुणों, अच्छाइयों को नहीं आने देता। मलिन मन ईश्वर के आनन्द, उसके सर्वज्ञ, सर्वव्यापक निराकारादि स्वरूप एवं उसके प्राप्ति स्थान अन्तःकरण के ज्ञान में बाधक बन बैठा है।

दुरित हटाने का फल

यजुः मन्त्र में निर्दिष्ट ईश्वर प्राप्ति की गहराई को जो ढूँढ़ेगा, वह ही ईश्वर दर्शन का साफल्य प्राप्त कर सकेगा। ऋषि = मन्त्रद्रष्टा मन्त्रार्थ की दृष्ट गहराई को आख्यान = कथा प्रसंग मिश्रित कथन द्वारा अभीष्ट विषय प्रतिपादन में प्रीति रखते हैं। महर्षि यास्क ने इस तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता।
निरु. 10/1/10

ईश्वर उपलब्धि प्रकरण के कथोपकथन में यह चर्चित परिब्राट् कथा अत्यन्त उपयुक्त उदाहरण है। ईश्वर प्राप्ति के बाधक राग, द्वेषादि निवारण प्रसंग में यह भी जानना उपादेय है कि दुर्गुणादि को छोड़ना ईश्वर प्राप्ति में ही आवश्यक नहीं, अपितु शारीरिक, बौद्धिक, परसहाय्य, चतुरता, सत्यविद्या के प्रकाश, लौकिक व्यवहार आदि की उपलब्धियों में भी दुर्गुण आदि का त्याग आवश्यक है। महर्षि दयानन्द ने इस उपादेयता के परिप्रेक्ष्य में विश्वानि

देव...मन्त्र का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ईश्वरप्रार्थनाविषय में बहुत उत्तम चिन्तन दिया है—

अस्मिन् वेदभाष्यकरणानुष्ठाने ये दुष्टा विघ्नास्तान् प्राप्तेः पूर्वमेव परासुव दूरं गमय, यच्च शरीरबुद्धिसहायकौशलसत्यविद्याप्रकाशादि भद्रमस्ति तत्त्वकृपाकटाक्षेण हे परब्रह्मन्! नोऽस्मभ्यं प्रापय, भवत्कृपाकटाक्षसुसहायप्राप्त्या सत्यविद्योज्ज्वलं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं भवदधितानां वेदानां यथार्थं भाष्यं वयं विदधीमहि। तदिदं सर्वमनुष्योपकाराय भवत्कृपया भवेत्। अस्मिन् वेदभाष्ये सर्वेषां मनुष्याणां परमश्रद्धयाऽत्यन्ता प्रीतिर्यथा स्यात् तथैव भवता कार्यम्। (ऋ. भा. भू. ईश्वरप्रा. पृ. 3)

महर्षि के इन वचनों का तात्पर्य है कि वेदभाष्य करने के अनुष्ठान में जो दुरित रूप विघ्न हैं, वे प्राप्ति से पहले ही हमसे दूर रहें। वेदभाष्य अनुष्ठान में हमारे शरीर में आरोग्य, बुद्धि, सज्जनों का सहाय, चतुरता और सत्यविद्या का प्रकाश आदि भद्र रूप हैं वह अपनी कृपा से हे परब्रह्म! प्राप्त कराइये। आपकी कृपा के सामर्थ्य से आप द्वारा रचित जो सत्य विद्या से युक्त, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध वेद हैं उनका यथार्थ अर्थ से युक्त वेदभाष्य सुख से मैं कर सकूँ। जो यह वेदभाष्य आपकी कृपा से सभी मनुष्यों के उपकार के लिए होये। इस वेदभाष्य में सब मनुष्यों की परम श्रद्धा पूर्वक अत्यन्त प्रीति होवे, वैसी ही आप कृपा दृष्टि करें।

महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र की उपादेयता समाधि द्वारा भली भाँति समझ ली थी। राग, द्वेष व कल्मष अपने लिए तथा दूसरे के लिए दोनों के लिए हानिकारक हैं। कल्मष युक्त व्यक्ति न अच्छा कर सकता

है और न ही कलुषित व्यक्ति किसी के अच्छे कार्य को अच्छा मान सकता है। अतः महर्षि ने जहाँ परमात्मा से अपने शरीर, बुद्धि, सहाय, कौशल, सत्य विद्या के प्रकाश आदि की प्राप्ति के लिए उसकी कृपा की प्रार्थना की है, वहीं अपने वेदभाष्य के निर्विघ्न अनुष्ठान, परिपूर्णता एवं सभी प्रीति से पढ़ें इसकी भी ईश्वरीय कृपा का सामर्थ्य माँगा है।

महर्षि ने इसी उद्देश्य से अपने वेदभाष्य के प्रति मण्डल, प्रति अध्याय के आरम्भ में एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के आरम्भ में **विश्वानि देव...** मन्त्र का निर्देश किया है। व्यावहारिक सुखों, उपलब्धियों में मन की पवित्रता, राग, द्वेषादि का निवारण नितान्त अपेक्षित कर्म है।

इस प्रकार निष्कर्ष यह हुआ कि ईश्वर की भक्ति, प्राप्ति का केन्द्र हृदय गुहा है। उस हृदय गुहा को राग, द्वेषादि के अज्ञान, तमस से बचाना अनिवार्य तथ्य है। सही स्थान एवं राग, द्वेषादि से रहित निर्मल स्थान का परिज्ञान ही ईश्वरीय कृपा, ईश्वरीय आनन्द प्राप्ति में सहायक बनता है। ईश्वर की उपलब्धि अपने भीतर होती है। हमारी पहुँच का स्थान अपने भीतर है। भीतर किया हुआ प्रयास ही सार्थक होता है। इधर-उधर बाहर प्राप्त करने का प्रयास सदा ही असफल रहा है, भटकना व्यर्थ है। अतः हमें अपने को केन्द्र बिन्दु बनाकर ही अपने अन्दर सर्वव्यापक ईश्वर की कृपा, ईश्वरीय आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए, यही वेदादि शास्त्रों का सार है।

पाणिनी कन्या महाविद्यालय,
वाराणसी, उ.प्र.
मो. : 09680674789

पृष्ठ 07 का शेष

स्वामी विरजानन्द, आचार्य ब्रह्मदत्त...

में पत्नी प्रज्ञा जी अर्थ अभाव से संघर्ष करते रहने की अभ्यस्त जो थीं। अतः धन का बहुत गम्भीर संकट नहीं माना। कुछ वर्ष सरकारी स्कूल में अध्यापन कार्य कर लेने से अध्यापन के खट्टे मीठे अनुभव संजोये बहन जी ने ईश्वर का महान् कार्य अपने हाथों में ले लिया। बहन जी यदि चाहती तो विद्यालय के झमेले में नहीं पड़कर वेद प्रचार की अन्य गतिविधियों में अपनी पूरी शक्ति लगा सकती थी।

सुश्री प्रज्ञा जी की लेखन कला का नमूना काशी पण्डित सभाध्यक्ष म.प्र. पण्डितराज डॉ. गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी की “सर्वदर्शन समन्वय” पुस्तक में “महर्षि दयानन्द प्रतिपादित वैदिक दर्शन” नामक एक अध्याय है जो पण्डिता

प्रज्ञादेवी ने लिखकर उनको दिया। विदुषी का अथर्ववेद पर किया हुआ सम्पादन भी पठनीय है। जो उन्होंने पं. क्षेमकरण त्रिवेदी द्वारा किये भाष्य के पुनर्मुद्रण के लिए तैयार किया था। हालांकि वह भाष्य मात्र 4 काण्डों तक ही प्रकाशित हुआ पर विद्वत्ता देखते ही बनती है। कितने लेख और पुस्तकें इस विदुषी ने आर्य जगत् को दिये हैं, इन सबका विवरण अब शोध कार्य की वस्तु बन गया है।

बड़े-बड़े सम्मेलनों में तथा छोटी-छोटी गोष्ठियों में जहाँ भी इनको बोलना पड़ा है, वहाँ इनकी विद्वत्ता की छाप सन्तुलित रही है। विद्वानों के शास्त्रार्थ में अथवा संवादों में अपना पक्ष प्रस्तुत करने की क्षमता बहन जी में कम

नहीं रही। इन सबसे उनका एक ही लक्ष्य सदैव वेद रहा है। वेद ज्ञान के अलावा और बातों में अपना समय लगाना उनको स्वीकार नहीं हुआ। गुरुजी की डॉट के एक वाक्य ने उनकी दिशा निर्धारित कर दी थी। वह वाक्य भी बड़ा आदर्श वाक्य “**पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति**”।

ऐसी योग्य महिला ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर पाणिनी कन्या विद्यालय को स्थापित करके उसको चलाने में अपने आपको समर्पित कर दिया।

सन् 1996 में विद्यालय की रजत जयन्ती की कल्पना करने वाली संस्था की जन्मदात्री सुश्री प्रज्ञा जी ने 6 दिसम्बर 1994 को इसी के प्रांगण में इस लोक से विदा ले ली। अपने पीछे छोड़ चली गुरुकुल का फलता-फूलता परिवार। गुरुकुल उनके जीवन का इतिहास बन गया।

वेदार्थ की कुंजी की रक्षा का स्थायी

प्रबन्ध बहन जी करके गई हैं। इस युग में वेद को जानने की विद्या प्राप्ति के स्रोत तीन महापुरुष हुए हैं। तीनों अर्थात् स्वामी विरजानन्द जी, स्वामी दयानन्द जी एवं पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु की परम्परा आर्ष व्याकरण से चली है, उसी परम्परा का अनुयायी पाणिनी कन्या महाविद्यालय वाराणसी है। कन्याओं में किसी परम्परा का प्रचलन करा देना निश्चय ही उस विद्या का स्थायी समाधान है। मातृशक्ति में वेदभक्ति के गुण भर देना मानव जाति को सुसंस्कृत करने का सर्वोत्तम उपाय है।

हम सबका पुरुषार्थ होना चाहिए कि बहन जी ने जिस संस्था को अपने तप त्याग से स्थापित किया है, वह संस्था अधिकाधिक उन्नति की ओर बढ़े।

(श्री गजानन्द आर्य अभिनन्दन ग्रंथ से साभार)



पत्र/कविता

वन्देमातरम् का विरोध-राष्ट्र विरोध

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका महत्व व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सूर्य कि भांति प्रकाशमान होता है। उनमें से एक शब्द है "वन्देमातरम्"। जिसका भारत को स्वतन्त्र कराने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस शब्द के सम्बन्ध में अनेक अवसरों पर अनेक देशभक्तों ने महिमा गाई है। कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों के कथन को नीचे देते हैं।

सन् 1896 में प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान रहीमतुल्ला सयानी जो कांग्रेस के भी अध्यक्ष थे उन्होंने गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर को कलकत्ते में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में आदरपूर्वक बुलाकर वन्देमातरम् गान विशेष रूप से गवाया था। उन्होंने अध्यक्ष के नाते यह व्यवस्था भी दी थी कि आगे से इस राष्ट्रगान को कांग्रेस की हर बैठक में गाया जाए।

सन् 1837 में कांग्रेस के राष्ट्रीय नेता तथा मुसलमानों के सर्वमान्य खिदमतगार मौ रफीक खान ने वन्देमातरम् गान को राष्ट्रीय गीत के रूप में गाये जाने की संस्तुति की थी। लेकिन दुर्भाग्य से आज के कुछ मुस्लिम नेता श्री जिन्ना के कदमों पर चल रहे हैं, जिसने भारत विभाजन कराया था। कहा जाता है कि मौ, जिन्ना को नमाज पढ़ना भी नहीं आता था।

सन् 1857 की क्रान्ति के बाद पहला सशक्त आन्दोलन 1906 में बंग-विभाजन के बाद हुआ था। जिससे ब्रिटिश सरकार की जड़ें हिल गई थीं। वन्देमातरम् का नारा ही इस आन्दोलन का मूल मंत्र था जबकि संयुक्त बंगाल में मुसलमानों की

रोग रहित रहना अगर तो न गाय को मार

जिसके अगणित सुत-सुता वह माँ मारी जाय।
या दुष्टों को मार दे या पड़ हीरा खाय॥
'पंचगव्य' का मान कर है संजीवन-सार।
रोग मुक्त रहना अगर तो न गाय को मार॥
तिरस्कार मत कर कभी बन न धरा का भार।
गो पालन कर बावरे कुछ तो कर्ज उतार॥
गोवर्धन करते रहे तभी बने गोपाल।
गोबरघन है असल में क्यों रहते कंगाल॥
सकल सृष्टि का देख लो हुआ हाल-बेहाल।
'गऊ ग्रास' बिन हो गये दुर्लभ आटा-दाल॥
'वैतरणी' बहती यहीं करे कष्ट से दीन।
पूँछ पकड़ ले गाय की दुःख एक-दो-तीन॥
हाथ फेर ले प्रेम से रक्त चाप मिट जाय।
हृदय-रोग रहता नहीं जिस आंगन में गाय॥
कैंसर दुख देता बहुत मार डालता एड्स।
खुशियाँ ही खुशियाँ वहाँ जहाँ गाय के शेड्स॥
टिकती वहाँ दरिद्रता नहीं कभी क्षण मात्र।
सारे देवी-देवता बसते गौ के गात्र॥
सोना बरसेगा वहाँ वे गोबर से लीप।
गौ सेवा के बल बने थे सम्राट दिलीप॥

डॉ. सारस्वत मोहन 'मनीषी'

मोबाइल नं. 9810835335, 8527835835

जन-संख्या हिन्दुओं से अधिक थी। मुस्लिम नौजवानों ने वन्देमातरम् गाते हुए पुलिस की गोलियाँ-लाठियाँ खाई थी आज के कुछ सिरफिरे मुस्लिम नेता जिन्ना के पद-चिन्हों पर चल कर वन्देमातरम् गान का विरोध कर रहे हैं।

आज़ादी से पहले अंग्रेज़ सरकार के आदेश पर स्कूलों तथा अन्य स्थानों पर वन्देमातरम् गान पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

मामचन्द रिवाड़िया

A/C-23 टैगोर मार्डन, नई दिल्ली-27

मो. 9212003162

महर्षि दयानन्द व सत्यार्थ प्रकाश का आज भी तिरस्कार

केन्द्रीय पाठ्यक्रमों की अक्षम्य भूल

आज यह अनुभव किया जा रहा है कि चाहे केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा अनुमोदित एवं प्रकाशित अद्यतन पाठ्यक्रम या पाठ्य पुस्तकें हो, वे तथ्यपरक शैक्षणिक सक्षमता देने के स्थान पर विद्यार्थियों को मात्र राजनीतिक सक्रियता का एकांगी पाठ पढ़ाने में जुटी हैं। हाल का एक ऐसा उदाहरण सामने आया है जैसे सम्बद्ध प्राधिकरणों व सरकारी पैतलों ने आधुनिक युग के महान समाज सुधारक वे हिन्दूधर्म

के वैदिक रूपांतरण के प्रखरतम प्रवक्ता महर्षि दयानन्द को उपेक्षित व अपमानित करने की ठान ली है। उनके बारे में कुछ मौलिक तथ्यों को भी छिपाकर मात्र उन्हें मूर्ति पूजा विरोधी और अंधश्रद्धा निर्मूलक कहकर वैदिक व्याख्याता व मीमांसक के महान ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" जो आज इस विश्व की 50 से अधिक भाषाओं में उपलब्ध है, उसका जिक्र भी नहीं किया गया है।

आज चाहे इतिहास और नागरिक शास्त्र की सी.आई.एस.सी.ई की मिडिल स्कूल की कोई पुस्तक हो अथवा सी.बी.एस.ई. का कोई आधुनिक इतिहास का ग्रंथ हो स्वामी दयानन्द व आर्य समाज द्वारा बाल-विवाह के विरोध, बालिकाओं की शिक्षा या महिला अधिकारों के समर्थन का कोई उल्लेख नहीं दीखता। विज्ञान की अद्यतन शाखाओं की जड़ें वेदों में हैं यह तथ्य कहीं भी उल्लिखित नहीं है।

नया कम्प्यूटर-समनुकूल समग्र समन्वित 2016-17 का काउंसिल फॉर द इण्डियन स्कूल सर्टीफिकेट इग्ज़ामिनेशन (सी.आई.एस.ई) की 8वीं कक्षा के पाठ्यक्रम के लिए 370/- रु. का एक ग्रंथ 'द ट्रेल' मेरे सामने है जिसकी लेखिका जयन्ती सेन गुप्ता ने इसे एक मौखिक अनुबंध के तहत आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस से आई.सी.एस.ई. मिडिल स्कूल के आधिकारिक पाठ्यक्रम में इतिहास और नागरिक शास्त्र विषय के लिए 200 पृष्ठों के कलेवर में प्रकाशित किया है। यह पुस्तक ऑन-लाइन डिजिटल श्रम्य दृश्य माध्यम से अर्थात् संचार प्रणाली के द्वारा प्रश्नोत्तर के अभ्यास के लिए भी अनुमोदित

है। इस पाठ्यक्रम को एक "टैक्निकल मैनुअल" के संस्करण के रूप में शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा अभ्यास के लिए संभावित उत्तरों के साथ प्रस्तुत किया गया है जो अनेक स्थानों पर महर्षि दयानन्द व आर्य समाज के लिए नकारात्मक ही नहीं, निन्दात्मक भी हैं। साफ है जहां भी उन देशभक्तों का जिक्र है जो कट्टर आर्य समाजी थे उन पर तत्कालीन कांग्रेस व नेहरू गाँधी का विद्वेष सामने लाया गया है। जयन्ती सेन गुप्ता को इतिहास की वरिष्ठ व अनुभवी अध्यापिका कहा गया है जो कोलकाता के प्रिट मेमोरियल स्कूल में 30 वर्षों से पढ़ा रही हैं और विषय पर अनेक कार्यशालायें आयोजित कर चुकी हैं। इन्हें काउंसिल फॉर द इण्डियन स्कूल सर्टीफिकेट इग्ज़ामिनेशन (सी.आई.एस.सी.ई.) का प्रमुख रिसोर्स पर्सन भी कहा गया है। देश के कोने-कोने में फैले केन्द्रीय स्तर के अंग्रेज़ी विद्यालयों में उपयोग के लिए इस पाठ्यक्रम के बीसों संस्करण लाखों की संख्या में ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस के दिल्ली वाई.एम.सी.ई. लायब्रेरी बिल्डिंग, जय सिंह मार्ग से प्रकाशित कर चुकी है। क्या हम जानते हैं कि चाहे कच्छ से कोहिमा हो गंगानगर से ईटा नगर या कलकता से अंडमान अथवा लक्षद्वीप हो, 6 से 8वें वर्ग के कम से तीन विषय आधुनिक इतिहास व नागरिक शास्त्र विषयों में इतिहास को विशेषकर आर्य समाज के प्रणेता स्वामी दयानन्द के अवदान को नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

मज़े की बात यह है कि उपयुक्त ग्रंथ में जहाँ भी चाहे राजस्थान स्थित भीलवाड़ा के शाहपुरा अथवा जोधपुर, जयपुर स्थित विशाल देशी रियासतों के भूखण्ड में आर्य समाज को राजकीय धर्म अपनाने में तत्कालीन अंग्रेज़ वायसराय लार्ड रिपन आदि के सहयोग व समर्थन का उल्लेख करने के स्थान पर नेहरू गाँधी की द्वेष भरी टिप्पणियों, प्रस्तावों व न्यायालयों तक में उनके विरुद्ध विज्ञप्ति को जारी करने में राजनीतिक सहायता दी गई थी। स्वामी दयानन्द की मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने की आग्रही दृष्टि का भी मखौल उड़ाया गया तथा उनके द्वारा वेदों को विज्ञान-दृष्टि की सभी विद्याओं का जनक कहने और कन्याभूषण हत्या को क्रूरतम ब्रह्महत्या जैसा पाप कहना भी उपहास का पात्र बनाया गया है। देश के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा आज "द ट्रेल" जैसी पाठ्यपुस्तकों पर अविलम्ब प्रतिबंध लगाकर पूर्णतः वैज्ञानिक, समत्वदर्शी एवं सार्वभौमिक सत्यों को उजागर करने वाले ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश की उपेक्षा करने वाली साजिश को नाकाम किया जाना अनिवार्य है।

हरिकृष्ण निगम

ए-1802 पंचशील हाईड्स

महावीर नगर कान्दिवली (प) मुम्बई-400067

मो. 9820215464

साई स्फूर्ती डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, खम्मम (आन्ध्र प्रदेश) में होने लगी वैदिक गतिविधियाँ

विद्यालय से प्राप्त एक विज्ञप्ति के अनुसार साई स्फूर्ती डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बी.गंगाराम, सत्तपल्ली, खम्मम (आन्ध्र प्रदेश) में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, विकास तथा उनमें नैतिक मूल्यों का आह्वान करने की दिशा में प्रयत्न आरम्भ हो गये हैं। इस विज्ञप्ति के अनुसार विद्यालय में छात्रों को प्रतिदिन यज्ञ कराया जाता है और कक्षाओं में “विश्वानि देव.....” का मंत्र पाठ और ग्यारह बार ‘ओ३म्’ का उच्चारण करने के बाद कक्षा का कार्य शुरू किया जाता है। दिन का कार्यक्रम



समाप्त होने पर बच्चे एक स्वर में ‘शांति पाठ’ बोलते हैं।

विशेष अवसरों पर पर्वों पर बच्चों द्वारा स्वागत-कार्य एवं विशेष मंत्रों के माध्यम

से मंगलाचरण किया जाता है जिसमें वे उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। नये सत्र का आरम्भ सभी अध्यापकों सहित विद्यालय में यज्ञ से होता है। विद्यालय में वर्ष में एक बार ‘वेद सप्ताह’ का आयोजन भी होने लगा है जिससे छात्रों को वेद और वैदिक विचारों से अवगत कराया जा सके। श्रीमती सीता किरण जी समय-समय पर विद्यार्थियों को डी.ए.वी. और आर्य समाज के मूल उद्देश्यों से अवगत कराती हैं और इनसे प्रेरणा पाकर अध्यापक और छात्र जन-जन तक आर्य समाज के विचारों को पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

डी.ए.वी. बबराला में हुई अध्यापक ‘सशक्तिकरण’ विषय पर कार्यशाला

डी.ए.वी. सी.एम.सी., चित्र गुप्ता रोड, नई दिल्ली और अकादमिक उत्कृष्टता क्षेत्रीय केंद्र के तत्वाधान में शैक्षणिक उत्कृष्टता के लिए युपी-बी जोन, क्लस्टर-2 के लिए टी. सी. डी. ए. वी. पब्लिक स्कूल, बबराला में शिक्षक संवर्धन और वरिष्ठता के लिए सशक्तिकरण पर आठ विषयों भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान, गणित, अर्थशास्त्र, कंप्यूटर विज्ञान, लेखा और व्यवसाय अध्ययन में दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया।



प्रतिनिधियों जैसे कहा और जगदीश चन्द्र बसु, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, विलियम शेक्सपियर, थॉमस अल्वा एडिसन, लाल बहादुर शास्त्री जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तित्वों से प्रेरित प्रेरणादायी घटनाओं का हवाला देते हुए उन्हें प्रेरित किया। कार्यशाला में प्राप्त ज्ञान को छात्रों के सर्वोत्तम लाभ के लिए लागू करने के लिए उन्हें प्रेरित किया गया।

विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री जगदीश सिंह ने देव नासयण भरद्वाज के प्रति आभार व्यक्त करते हुए सभी प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण के दौरान सीखे कौशल को विद्यार्थियों तक पहुँचाने का आह्वान किया एवं धन्यवाद ज्ञापित किया।

दूसरे दिन आम सत्र में पंडित देव नारायण भारद्वाज की उपस्थिति से कार्यशाला को एक नया आयाम मिला। पंडित देव नारायण भारद्वाज जी डी ए वी

विचारधारा के प्रति पूर्णतया समर्पित एक अप्रतिम व्यक्तित्व हैं जिनका प्राप्त होना अत्यन्त सौभाग्य का विषय है।

पंडित देव नारायण भारद्वाज जी

ने छात्रों के लिए एक शिक्षक के महत्व और राष्ट्र के निर्माण के बारे में बहुमूल्य विचार दिए। उन्होंने शिक्षकों को बृहस्पति, गायत्री, सावित्री और चाणक्य के

पृष्ठ 02 का शेष

अमृत-पान ...

बुखार चढ़ा हुआ है!

बीमार मित्र कह रहे थे कमबख्त नौकर को न जाने क्या हो गया है। इधर कई दिन से न रोटी ही अच्छी बनती है, न भाजियों का आनन्द है, न दाल का स्वाद। कुछ विचित्र लापरवाही से काम करता है। किसी में नमक, किसी में मिर्च नहीं, किसी में खटाई कम है, किसी में मीठा ही नहीं।

मैंने कहा—“अन्ततः यह कारण क्या है? पहले तो तह खूब स्वादिष्ट खाना तैयार करता था।”

“अजी! जब से मुझे बुखार चढ़ा है, तभी से इसे कुछ हो गया है। खाने का स्वाद आता ही नहीं। वह बात-वह आनन्द आता ही नहीं। अंगुलियाँ चाट-चाटकर खा जाया करता था, परन्तु अब दो ग्रास ले-जाने भी कठिन हो जाते हैं। कुछ आनन्द आये तो खाऊँ भी।

जब स्वाद ही न हो तो भला खाया क्या जा सकता है?”

मैंने फिर कहा—“अच्छा बुखार चढ़ा हुआ है, तभी आपको स्वादिष्ट और आनन्ददायक खानों में आनन्द नहीं आता और ये सर्वथा स्वादरहित प्रतीत होते हैं।”

“नहीं जी! मैं खानेवाला तो वही हूँ, अब खानों में ही स्वाद नहीं रहा।”

मैं इस पर मुस्कराया और यह कहता हुआ कि जब बुखार उतर जाएगा तो खाने स्वयमेव स्वादिष्ट हो जाएँगे, अपने रोगी मित्र को शुभ कामनाएँ देकर नीचे उतरा, जहाँ मेरे सत्सङ्गी मित्र खड़े थे। मैं हँसता हुआ उतर रहा था, इसलिए मेरे मित्रों ने मेरी हँसी का कारण पूछा। मैंने अपने रोगी मित्र की स्वादहीनता की कथा सुनाई और बताया कि उसे स्वादिष्ट खानों का भी मजा नहीं आता,

क्योंकि उसे बुखार चढ़ा हुआ है।

मेरी बात सुनते ही सहसा मेरा एक सत्सङ्गी मित्र उछल पड़ा और कहने लगा—“लो! आज आपके प्रश्न का उत्तर मिल गया। तुम कहा करते हो कि संसार में अब कोई प्रभु का साक्षात्कार करनेवाला नहीं रहा, कोई वेद जाननेवाला नहीं रहा। कोई ऋषि और तपस्वी नहीं रहा। सब पापी हो गये हैं।”

मैं—“हाँ कहता तो हूँ, और क्या गलत कहता हूँ?”

सत्सङ्गी—“गलत नहीं तो क्या सत्य है? हाँ, यह वैसे ही सत्य है, जैसे तुम्हारे मित्र की स्वादहीनता।”

मैं—“उसे तो बुखार चढ़ा हुआ है।”

सत्सङ्गी—“आपको भी बुखार चढ़ा हुआ है।”

मैं चकित रह गया। मैंने माथे को हाथ लगाया, पेट पर हाथ रखा। कहीं बुखार अनुभव नहीं हुआ। फिर जेब से थर्मामीटर निकाला। उसे लगाया, पारा 98.5 से

ऊपर न चढ़ा। सब-कुछ देखकर मैंने अपने सत्सङ्गी मित्र से कहा—“क्या बेतुकी हाँकते हो?”

सत्सङ्गी—“प्यारे! बेतुकी नहीं है। आपको तृष्णारूपी बुखार चढ़ा हुआ है, इसलिए आपको कोई प्रभु-भक्त दिखाई नहीं देता, जैसे बुखारवाले को स्वादिष्ट खाने स्वादहीन प्रतीत होते हैं। तृष्णारूपी बुखार को उतरने दो, फिर देखो कि तुम्हें ईश्वर-भक्त दिखाई देते हैं या नहीं।”

मैं—“यह बुखार कैसे उतारा जाए?”

सत्सङ्गी—“ईश्वर-विश्वास से यह बुखार उतर सकता है। दूसरे, अपनी आवश्यकताओं को कम करो। तृष्णा से दूर रहो, फिर बुखार भी उतर जाएगा और ईश्वर-भक्त भी दिखाई देंगे। जब तक यह बुखार चढ़ा है तब तक तो स्वादिष्ट भोजन भी स्वादहीन ही लगेंगे।”

.... क्रमशः

मोहन लाल उप्पल डी.ए.वी. फगवाड़ा में नए सत्र की शुरुआत यज्ञ से हुई

मोहन लाल उप्पल डी.ए.वी. कॉलेज फगवाड़ा में नए अकादमी का सत्र यानि आने वाले सेशन का शुभारम्भ हो गया। नए सेशन की शुरुआत हवन यज्ञ में पवित्र आहुतियाँ डालकर हुई। कॉलेज के चैयरमैन श्री मान विकास उप्पल जी मुख्य मेहमान के रूप में उपस्थित हुए। कॉलेज के सम्पूर्ण विद्यार्थियों ने पूर्ण श्रद्धा और भक्ति के यज्ञ में भाग लिया। इस मौके पर कॉलेज कार्यकारी प्रिंसीपल डॉ. सुमन टंडन जी ने छात्र-छात्राओं के साथ यज्ञ में आहुति डालते हुए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना कि कॉलेज हमेशा बुलन्दियों को छुए। उन्होंने विद्यार्थियों को मोरल (नैतिक



मूल्यों) को बढ़ावा देने और अपने को एक अच्छा विद्यार्थी प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया और पिछले सत्र में प्राप्त करने वाली यूनिवर्सिटी में प्राप्त उपलब्धियों के बारे में

अवगत करवाया।

कॉलेज के चैयरमैन श्री विकास उप्पल जी ने विद्यार्थियों को अपना आशीर्वाद दिया। इस कार्यक्रम के दौरान प्रिंसीपल जी

ने आए हुए सभी मेहमानों का और कमेटी का धन्यवाद एवं स्वागत किया। कॉलेज प्राण में आए सभी नए छात्र-छात्राओं का स्वागत भी तहे दिल से किया और कहा कि यह कॉलेज दिन दौगुनी रात चौगुनी उन्नति करे। सभी विद्यार्थी यहाँ से शिक्षा प्राप्त करके अपने उद्देश्य को प्राप्त करें। ताकि कामयाबी उनके कदम चूमे?

इस अवसर पर श्रीमती पूजा उप्पल जी अजीत सिंह वालिया, श्री सुरेश शास्त्री, श्री शिवरत्न उप्पल, श्री ओम प्रकाश गुप्ता, श्री अजीत सिंह वालिया, श्री सुरेश सैनी, श्री रविन्द्र बल्लिया श्री शाम सुन्दर, श्री मलकियत सिंह, कॉलेज के समूह स्टॉफ मैम्बर एवं विद्यार्थी मौजूद थे।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सैक्टर-14, गुरुग्राम में मनाया गया अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

21 जून, 2017 को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाया जाना, हम भारतीयों के लिए अत्यंत गौरव का विषय है। इसी उपलक्ष्य में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सैक्टर-14, गुरुग्राम को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का केंद्र बनाया गया जहाँ सभी ने उत्साहपूर्वक योग किया। इस अवसर पर गुरुग्राम में स्थित डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल की विविध शाखाओं के अध्यापक, अन्य सहयोगी कर्मचारी, छात्र तथा अभिभावकों की उपस्थिति ने कार्यक्रम



की शोभा का संवर्द्धन किया। कार्यक्रम में उपस्थित सभी लोगों ने विविध आसन किए तथा साथ ही उन्हें प्रत्येक आसन का महत्व भी समझाया गया। विद्यालय की प्राचार्या श्रीमती अपर्णा एरी जी ने योग के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है', अतः हमें योग को अपनी दिनचर्या का हिस्सा अवश्य बनाना चाहिए। इस प्रकार से 'ओ३म' ध्वनि के साथ कार्यक्रम का समापन किया गया।

एस. एल. बावा डी.ए.वी. कॉलेज बटाला में यज्ञ से हुआ नए शैक्षिक सत्र का शुभारम्भ

एल. एल. बावा डी.ए.वी. कॉलेज, बटाला की आर्य समाज समिति के अधीन प्रो. सुनील जेतली की देख रेख एवं स्थानीय प्रबन्धकर्त्री समिति के चैयरमैन श्री जगदीश राज साहनी की अध्यक्षता में नए शैक्षिक सत्र का आरम्भ यज्ञ द्वारा किया गया। नवीनमित यज्ञ यज्ञशाला में वैदिक परम्परानुसार करवाए गए प्रथम यज्ञ के दौरान विशेष रूप से आमंत्रित किए गए अतिथिगण श्री कुलदीप राज जी, श्री अरुण अग्रवाल जी, श्री भारत भूषण अग्रवाल जी, श्री सुखदेव जी तथा शहर की अन्य डी.ए.वी. संस्थाओं के प्रिंसीपल अनीता मेहरा, मिंटु सेखड़ी, सुभाष कुमार, प्रि. बाजवा, सहित कॉलेज



के शिक्षक तथा गैर-शिक्षक स्टाफ सदस्यों ने आहुतियाँ डालकर तथा मंत्रोच्चारण द्वारा नए सत्र में सफलता की नई बुलंदियों

को छूने की कामना की।

चैयरमैन श्री जगदीश राज साहनी ने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि

धार्मिक अनुष्ठान हमें ईश्वर से जोड़ते हैं तथा यज्ञ में डाली जाने वाली आहुतियाँ हमारी बुद्धि और विचारों को शुद्ध करती हैं। साथ ही उन्होंने सबको नए शैक्षिक सत्र के लिए शुभकामनाएँ भी दीं। प्रधानाचार्य जी ने आए हुए अतिथियों का धन्यवाद दिया तथा कहा कि डी.ए.वी. संस्थाएँ सदैव से छात्रों को नवीनतम शिक्षा तथा कहा कि डी.ए.वी. संस्थाएँ सदैव से छात्रों को नवीनतम शिक्षा देने के साथ-साथ नैतिकता की जड़ों से जोड़े रखने के लक्ष्य के लिए कार्यरत हैं। इस अवसर पर प्रो. डॉ. मंजुला उप्पल, सहित कॉलेज का समूह स्टॉफ तथा छात्र उपस्थित रहे।